त्रैमासिक पत्रिका • जनवरी-मार्च, 2000 • छह रुपये

मुक्तिकामी छात्रों-नौजवानों की पत्रिका

आह्वान

कैम्पस टाइम्स

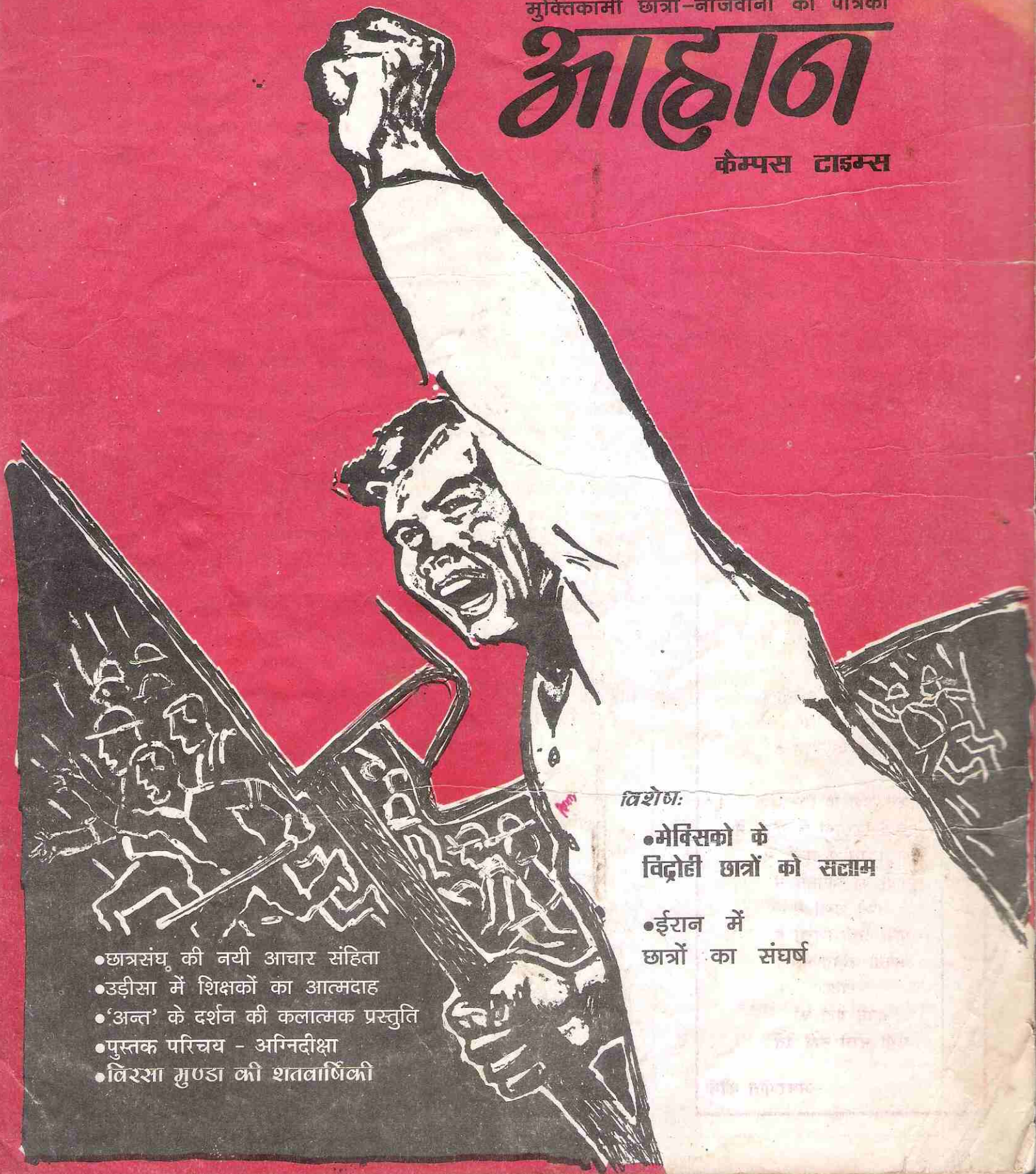

विशेष:

•मेक्सिको के विद्रोही छात्रों को सलाम

•ईरान में छात्रों का संघर्ष

•छात्रसंघ की नयी आचार संहिता
•उड़ीसा में शिक्षकों का आत्मदाह
•'अन्त' के दर्शन की कलात्मक प्रस्तुति
•पुस्तक परिचय - अग्निदीक्षा
•बिरसा मुण्डा की शतवार्षिकी

परिकल्पना की नई प्रस्तुतियां

माओ त्से-तुङ की कविताएं
राजनीतिक पृष्ठभूमि सहित विस्तृत टिप्पणियों के साथ
अनुवाद एवं सम्पादन : *सत्यव्रत*
पृष्ठ 96 • 20 रु. (पे.बै.) 40 रु. (सजिल्द)

चुनी हुई कहानियां :

मक्सिम गोर्की (पहला खण्ड)
गोर्की की हिन्दी में अनुपलब्ध 33 कहानियों का संकलन (कुल तीन खण्डों में)
पृष्ठ 168 • 35 रु. (पे.बै.) 70 रु. (सजिल्द)

चिरस्मरणीय
कय्यूर के किसान आन्दोलन के शहीदों पर लिखा निरंजन का प्रसिद्ध उपन्यास
अनुवाद : *रामकृष्ण पाण्डेय*
पृष्ठ 96 • 35 रु. (पे.बै.) 70 रु. (सजिल्द)

पांच कहानियां : पुश्किन
20 रु. (पे.बै.) 40 रु. (सजिल्द)

दो अमर कहानियां : लू शुन
20 रु. (पे.बै.) 40 रु. (सजिल्द)

श्रेष्ठ कहानियां : प्रेमचंद
20 रु. (पे.बै.) 40 रु. (सजिल्द)

तीन कहानियां : गोगोल
30 रु. (पे.बै.) 60 रु. (सजिल्द)

परिकल्पना प्रकाशन की अन्य पुस्तकें

शहीदेआजम की जेल नोटबुक
एक महान विचारयात्रा का दुर्लभ साक्ष्य
भारतीय इतिहास का एक दुर्लभ दस्तावेज
हिन्दी में पहली बार प्रकाशित
पृष्ठ 200 • 50 रु. (पे.बै.) 100 रु. (सजिल्द)

दुर्ग द्वार पर दस्तक
कात्यायनी (द्वितीय संशोधित संस्करण)
पृष्ठ 152 • 50 रु. (पे.बै.) 120 रु. (सजिल्द)

बेर्टोल्ट ब्रेष्ट : इकहत्तर कविताएं और तीस छोटी कहानियां
मूल जर्मन से अनुवाद : *मोहन थपलियाल*
पृष्ठ 148 • 60 रु. (पे.बै.) 120 रु. (सजिल्द)

लहू है कि तब भी गाता है
पाश
(पाश के सभी संग्रहों से चयनित प्रतिनिधि कविताओं का संकलन)
संपादक : *चमनलाल एवं कात्यायनी*
पृष्ठ 176 • 75 रु. (पे.बै.) 150 रु. (सजिल्द)

विचारों की सान पर
भगतसिंह और उनके साथियों के चुने हुए दस्तावेज, पत्र और वक्तव्य
पृष्ठ 104 • 20 रु.

माओवादी अर्थशास्त्र और समाजवाद का भविष्य
रेमण्ड लोट्टा के दो महत्वपूर्ण लम्बे लेखों का संकलन
संपादक : *विश्वनाथ मिश्र*
पृष्ठ 104 • 50 रु. (पे.बै.) 100 रु. (सजिल्द)

समर तो शेष है...
इप्टा के दौर से आज तक के प्रतिनिधि क्रान्तिकारी समूहगीतों का अनन्य संकलन
पृष्ठ 144 • 35 रु. (पे.बै.) 70 रु. (सजिल्द)

क्रान्ति का विज्ञान
लेनी वुल्फ
पृष्ठ 36 • 10 रु.

अब इंसाफ होने वाला है
उर्दू की प्रगतिशील कहानियों का प्रतिनिधि संकलन
संपादक : *शकील सिद्दीकी*
पृष्ठ 248 • 75 रु. (पे.बै.) 150 रु. (सजिल्द)

मध्यवर्ग का शोकगीत
हान्स माग्नुस एंत्सेंसबर्गर की कविताएं
सम्पादन एवं अनुवाद : *सुरेश सलिल*
पृष्ठ 72 • 25 रु. (पे.बै.) 50 रु. (सजिल्द)

राहुल फाउण्डेशन के प्रकाशन

नये प्रकाशन

माओ त्से-तुङ की रचनाओं के उद्धरण
—35/-

Quotations from Mao Tse-Tung
—40/-

पार्टी साहित्य और पार्टी संगठन
—लेनिन —15/-

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद
—वी. अदोरात्सकी —15/-

राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त (खण्ड-दो)
(दि शंघाई टेक्स्टबुक) —60/-

बुर्जुआ वर्ग पर सर्वतोमुखी अनियकत्व लागू करने के बारे में
—चाङ चुन चियाओ — 3/-

मई दिवस का इतिहास
अलेक्जेण्डर ट्रैक्टनबर्ग — 3/-

राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त (खण्ड-एक)
(दि शंघाई टेक्स्टबुक ऑफ पोलिटिकल इकॉनमी)
60 रुपये (पेपरबैक), 125 रुपये (सजिल्द)

कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र
—कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एंगेल्स रु. 10.00

अक्टूबर क्रान्ति और लेनिन
—एल्बर्ट रीस विलियम्स रु. 75.00

दायित्वबोध पुस्तिका श्रृंखला

अनश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं
—दीपायन बोस रु. 10.00

समाजवाद की समस्याएं, पूंजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति
—शशिप्रकाश रु. 12.00

क्यों माओवाद
—शशिप्रकाश रु. 10.00

बिगुल पुस्तिका श्रृंखला

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा
—वी.आई. लेनिन रु. 5.00

मकड़ा और मक्खी
—विल्हेल्म लीब्कनेख्त रु. 2.00

ट्रेडयूनियन काम के जनवादी तरीके
—सर्जी रोस्तोवस्की रु. 2.00

राहुल फाउण्डेशन एवं परिकल्पना प्रकाशन की पुस्तकों के मुख्य वितरक :

जनचेतना
3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ-226 010 ✆ 308896
(व्यक्तिगत प्रतियों के लिए 12 रुपए रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर ड्राफ्ट या एम.ओ. भेजें)

भगत सिंह ने कहा ...

'' भयानक असमानता और जबर्दस्ती लादा गया भेदभाव दुनिया को एक बहुत बड़ी उथल-पुथल की ओर लिये जा रहा है। यह स्थिति अधिक दिनों तक कायम नहीं रह सकती। स्पष्ट है कि आज का धनिक समाज एक ज्वालामुखी के मुंह पर बैठकर रंगरेलियां मना रहा है और शोषकों के मासूम बच्चे तथा करोड़ों शोषित लोग एक भयानक खड्ड की कगार पर चल रहे हैं।''

(असेम्बली बम कांड के बाद दिल्ली सेशन कोर्ट में भगत सिंह व बटुकेश्वर दत्त का बयान)

आह्वान

कैम्पस टाइम्स

मुक्तिकामी छात्रों-नौजवानों की त्रैमासिक पत्रिका

वर्ष 9 अंक 1 जनवरी-मार्च 2000

सम्पादक
मुकुल श्रीवास्तव

आवरण
रामबाबू

एक प्रति का मूल्य
छह रुपये
वार्षिक
चौबीस रुपये

सम्पादकीय कार्यालय
कल्याणपुर, गोरखपुर-273001
☎ 338922

स्वत्वाधिकारी आदेश सिंह द्वारा 'नौजवान' कार्यालय, कल्याणपुर गोरखपुर से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा ऑफसेट प्रेस नखास, गोरखपुर से मुद्रित।

इस अंक में

अपनी ओर से

उनके दुःस्वप्न, हमारी विरासत और नई सदी की उम्मीदें 6

शिक्षा जगत

गोरखपुर विश्वविद्यालय छात्र संघ की नयी अचार संहिता 8

गौरतलब

उड़ीसा में प्रशिक्षित शिक्षकों का आत्मदाह 14

सामयिकी

निजीकरण के खिलाफ उ०प्र० बिजली कर्मियों की हड़ताल 15

दुनिया जहान में

मेक्सिको के विद्रोही छात्रों को सलाम 16

ईरानी छात्रों का संघर्ष 17

आधी ज़मीन आधा आसमान

ईरान के स्त्री दमन का विरोध करो ! 20

हमारी विरासत

बिरसा मुण्डा - संघर्ष और समय 22

विज्ञान और समाज

मिथक और भ्रमजाल—एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य 24

पुस्तक परिचय

'अग्निदीक्षा'— एक नये मानव के जन्म की कहानी 29

''शराब पियें और पिलायें, अशिक्षा को दूर भगाएं'' 12

धर्म का धन्धा—ईसा मसीह का नया चेहरा 23

'अन्त के दर्शन'- की कलात्मक प्रस्तुति 27

पाठक मंच, नई कलम, गोष्ठी रपट

अमरजीत कौंके व नवारुण भट्टाचार्य की कविताएं

'आह्वान' : एक महत्वपूर्ण विचार-बिन्दु

पूरा भारतीय समाज आज एक ज्वालामुखी के दहाने पर बैठा है। अब यह सच्चाई एकदम उजागर हो चुकी है कि रुग्ण-विकलांग, बूढ़ा-बौना भारतीय पूंजीवाद आम जनता को कुछ भी सकारात्मक नहीं दे सकता। मेहनतकशों की जिन्दगी को इसने लूटमार, उत्पीड़न-शोषण और असह्य पीड़ा व्यथा के अन्धेरे रसातल में ढकेल दिया है। अथाह दुःखों के सागर के ऐश्वर्य के द्वीप और विलासिता की मीनारें, संसद में पूंजीपतियों की दलाल चुनावी पार्टियों के बहसबाजों की धींगामुश्ती, विदेशी लुटेरों को लूट की खुली छूट, भ्रष्टाचार के नित-निरन्तर भंग होते कीर्तिमान, काले धन की समान्तर अर्थव्यवस्था, संवेदनाओं को कुन्द करती विकृत-बीमार, साम्राज्यवादी-पूंजीवादी संस्कृति का धीमा जहर संचार माध्यमों पर पूंजी की सर्वग्रासी पकड़ दिवालिया अर्थतंत्र, नंगा राजनीतिक तंत्र, बिकता न्याय, ज्यादा से ज्यादा महंगी होती जा रही निरर्थक-अनुपयोगी-अवैज्ञानिक शिक्षा, सामान्य चिकित्सा के अभाव में मरते लोग—यही आज का वह नारकीय सत्य है जिसे फिलहाल, हारी हुई मानसिकता के शिकार लोगों ने अपनी नियति मान लिया है। इसे बदलने का रास्ता क्रान्ति का रास्ता है। क्रान्ति कठिन है, क्रान्ति का रास्ता लम्बा है, क्रान्ति ध्वंसकारी है, पर इसके बिना नये का निर्माण असम्भव है। यही आज का ठंडा सत्य है—नंगा सत्य है—पर यही मुक्तिदायी सत्य है। यही 'आह्वान' का निर्भीक उद्घोष है।

प्रासंगिक तथा विचारोत्तेजक

'आह्वान' का अक्टूबर-दिसम्बर, 1999 अंक यथासमय प्राप्त हुआ। धन्यवाद। अंक को नये कलेवर में देखकर प्रसन्नता हुई। इस अंक में प्रकाशित सामग्री तथा चुनाव पर पर्चा प्रासंगिक तथा विचारोत्तेजक है। आशा है, इसे भविष्य में और बेहतर ढंग से निकालते रहेंगे।

राम निहाल गुंजन
आरा, बिहार

'आह्वान' भेजने के लिए आभारी हूं। आप पत्रिका में काफी विचारोत्तेजक सामग्री छापते हैं।

• भारत भारद्वाज
जम्मू

पत्रिका अच्छी

पत्रिका वास्तव में अच्छी है। यह जानकार और अधिक प्रसन्नता हुई कि आप यह प्रयास विगत आठ वर्षों से कर रहे हैं। 'छात्रों-नौजवानों के लिए जनरल नॉलेज का आखिरी सबक' बेहद अच्छा लगा। मेरी समस्त शुभकामनाएं आपके साथ हैं।

सुनीत गोस्वामी, पत्रकार
नौबस्ता, लोहामण्डी
आगरा

मासिक किया जाए

मैं 'आह्वान' का नियमित पाठक हूँ और 'आह्वान' को अखबार से पत्रिका के रूप में पाकर मुझे काफी खुशी हुई। सबसे ज्यादा खुशी पत्रिका में संकलनों को देखकर हुई। मेरा सुझाव है कि पत्रिका को त्रैमासिक से द्वैमासिक और मासिक जल्द से जल्द किया जाए। मुझे पत्रिका के सभी लेख बहुत अच्छे लगे। उम्मीद है इस तरह की कृतियां प्राप्त होती रहेंगी।

धीरेन्द्र वर्मा
नैनीताल

हर वक्त आपके साथ

काफी लम्बे अर्से के बाद 'आह्वान' पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ। मैं इसे उस समय पढ़ा करता था जब इसका रूप एक समाचार पत्र की तरह था। अब तो यह एक पत्रिका का रूप अख्तियार कर चुकी है। यह प्रगति देखकर मुझे काफी प्रसन्नता हुई। पत्रिका के पहले अंक में प्रकाशित सभी सामग्रियां एक से बढ़कर एक थीं। जरूरत है इस पर अमल करने की। आपने सच कहा है कि 'आह्वान क्रान्ति की आत्मा को जागृत करने की जरूरत का अहसास है।' इससे हर एक व्यक्ति को जुड़ना चाहिए। जुड़कर एक नये रास्ते को अख्तियार करना चाहिए।

पत्रिका दिन-दूनी रात-चौगुनी आगे बढ़ती जाये। यही कामना है। आपके विचारों से मैं पूर्णतया सहमत हूं तथा हरवक्त आपके साथ हूँ।

संजय कुमार 'सुमन' (पत्रकार)
चौसा, मधेपुरा बिहार

प्रेरणादायक

पत्रिका के अक्टू०-दिस०'99 के अंक में 'आदि विद्रोही' उपन्यास का परिचय पढ़कर उपन्यास को पढ़ने की तीव्र इच्छा हो उठी। आगे भी इस स्तम्भ में अन्य प्रेरणादायक पुस्तक -परिचय अवश्य दें। 'हमारी विरासत' स्तम्भ के अन्तर्गत 'शहीदे आज़म की जेल नोटबुक' पढ़कर प्रसन्नता के साथ आश्चर्य भी हुआ क्योंकि भारत के क्रांतिकारी दौर का इतना महत्वपूर्ण दस्तावेज आखिरकार आज तक क्यों नहीं छप सका था ? उत्तर प्रदेश में पंचायतीराज' का भंडाफोड़ करता लेख अच्छा लगा। 'विनाशक जीन' से काफी जानकारी प्राप्त हुई। कुल मिलाकर, पत्रिका काफी अच्छी व प्रेरणादायक लगी।

कृपया आगे के अंकों में क्रान्तिकथा व अन्य महत्वपूर्ण दस्तावेज अवश्य ही प्रकाशित करें।

मीनाक्षी पन्त, पाइन्स, नैनीताल

आह्वान कैम्पस टाइम्स
एक प्रति का मूल्य : छह रुपये
वार्षिक : चौबीस रुपये मात्र
(सभी मनीऑर्डर एवं बैंक ड्राफ्ट सम्पादकीय कार्यालय के पते पर भेजें)

नारी जाति का अपमान समाज के लिए कलंक

हमारा समाज एक पिछड़ा हुआ समाज है। जहाँ जाति-धर्म, ऊंच-नीच का भेदभाव है। जहाँ एक तरफ समाज कल्याण की बातें होती हैं, वहीं दूसरी ओर लड़कियों का शोषण किया जाता है। हमारे समाज में नारी को कलंकिनी, आवारा और वेश्या का नाम दिया जाता है। लोगों के जुबान से निकले, इस तरह के घिनौने शब्द नारी जाति को अपवित्रता की दहलीज़ पर ले जाकर खड़ा कर देते हैं। एक समय में पवित्रता की प्रतीक नारी को आज अपवित्र बनाया जा रहा है, क्यों ? खुले बाजार में नारी के जिस्मों का सौदा करने वाले पुरुष जाति के ही लोग हैं। वैसे लड़कियों के साथ बलात्कार की घटनाएं आजकल आम होती जा रही हैं। एक लड़की को निस्सहाय, अकेली पाकर, मनुष्यरूपी दरिन्दे एक गीदड़ की भांति उस पर टूट पड़ते हैं। फिर बाद में कुछ लोग उस लड़की को 'बेचारी' का नाम दे देते हैं और कुछ कलंकिनी कहकर समाज की नजर में दीन-हीन बनाकर छोड़ देते हैं। क्या वह नारी मनुष्य जाति के नाम पर कलंक, ऐसे लोगों को माफ कर पायेगी ? जहाँ सिर्फ लाचारी और बेबसी हो, तो वह समाज में किस तरह जिये ?

आज नारी जाति को अपनी 'बेचारगी' से बाहर निकलकर अपनी मुक्ति की लड़ाई लड़नी होगी। इसके लिए हमें अपने देशवासियों को एक उज्जवल रास्ता दिखाना होगा।

निशा
डी०ए०वी० डिग्री कॉलेज
गोरखपुर

भटकती युवा पीढ़ी को क्रांतिकारी दिशानिर्देशन देने की जरूरत

युवा छात्रशक्ति इस समय अर्द्धजागृत अवस्था में है। इसे पूर्णजागृत करने का टॉनिक 'आह्वान' है। इस समय भटकती युवा पीढ़ी को क्रांतिकारी दिशानिर्देश की आवश्यकता है। विकृत राजनीति के कारण, वर्तमान समय में देश की व्यवस्था पतनशील है। इसका प्रत्येक अंग सड़-गल चुका है। हमें समाज की इस दुर्व्यवस्था को उखाड़ फेंकने के लिए एक सशक्त माध्यम की आवश्यकता है जो वैचारिक रूप से समृद्ध युवाओं को आपस में जोड़ने का काम करें। 'आह्वान' इस काम को सफलतापूर्वक कर रहा है। 'आह्वान' एक पत्रिका ही नहीं एक सोच, एक विचार है, जो देश की युवापीढ़ी के आक्रोश की चिंगारी को शोला बनाने का कार्य कर रहा है। आज भी देश में सैकड़ों भगतसिंह हैं। परन्तु युवा पीढ़ी को अपने अंदर के भगतसिंह को पहचानकर उसे समाज के प्रति अर्पित करना होगा। 'आह्वान' का यह आह्वान है कि सम्पूर्ण युवाशक्ति को जागृत कर देश की आत्मा में नयी जान फूंकी जाए। जिससे नवीन सहस्त्राब्दि में हमारा देश एक महानशक्ति बन सके।

हमें 'आह्वान' के सभी लेख अच्छे लगे, सिर्फ एक को छोड़कर। 'सिर्फ कोल्डड्रिंक ही बेच पाये' हमें 'आह्वान' के स्तर का नहीं लगा। प्रत्येक अंक में आप विज्ञान और आर्थिक मसलों के सम्बन्ध में भी लेख दें। इसके अतिरिक्त समाज की विभिन्न समस्याओं से सम्बन्धित व्यंग्य लेख भी दें।

जोश ब्रदर्स
डी.एस.बी. कैम्पस, नैनीताल

चीजों को बदलने के लिए
चीजों को समझना होगा !
चीजों को बदलने की प्रक्रिया में
खुद को बदलना होगा !!

ब्रह्मास्त्र के निर्माण की जरूरत

'आह्वान' पत्रिका के सभी साथियों को इस पत्रिका के सम्पादन कार्य के लिए बधाई ! मुझे यह पत्रिका पहलीबार नवम्बर'99 में मिली। इसका हर एक अंश मुझे बहुत अच्छा लगा। जिससे प्रभावित होकर मैं क्रांतिकारी संगठन दिशा छात्र समुदाय में शामिल हुआ और 19 दिस०'99 को बिस्मिल शहादत दिवस पर साइकिल जुलूस में भी सम्मिलित हुआ और वहां मेरा लगाव इस संस्था के प्रति और बढ़ गया। आज मैं इस पत्रिका के बारे में लिखने बैठा। आपलोगों ने इस पत्रिका में उपस्थित हर एक अंश को बहुत ही सच्चाईपूर्ण तथा निर्दोष तरीके से प्रस्तुत किया है और समाज में उपस्थित साम्राज्यवादी और पूंजीवादी जनतंत्र के खिलाफ लेख बहुत ही अच्छा लगा। इस झूठे जनतंत्र को समाप्त करने के लए युवा वर्ग ही सक्षम है क्योंकि अबतक की सभी क्रांतियां बिना युवा वर्ग के संभव नहीं हुईं। अतः मेरा सभी नौजवान साथियों से अनुरोध है कि इस क्रांति में भाग लेकर इसमें उपस्थित विनाशक अस्त्र (साम्राज्यवादी और पूजीवादी जनतंत्र) को समाप्त करें और एक ऐसे ब्रह्मास्त्र का निर्माण करें, जो इस विनाशक अस्त्र को समाप्त कर दे और एक समाजवादी जनतंत्र का सपना साकार हो सके और यह क्रांति बिना युवा वर्ग के संभव नहीं है। क्योंकि युवा रक्त की गर्मी से बर्फ की घाटी भी पिघल जाती है।

मनोज कुमार चतुर्वेदी
बी.एस-सी. (कृषि) चतुर्थ वर्ष
नो.पो.ग्रे. कालेज, बड़हलगंज

संवेदनहीन उपदेशों का क्या अर्थ ?

हमारे कितने अग्रज,गुरुजन, नेता, शीर्ष पदों पर आसीन जनसेवक और स्वयं प्रधानमंत्री तक देशप्रेम-राष्ट्रप्रेम की बड़ी-बड़ी बातें करते और उपदेश देते नहीं थकते हैं। लेकिन खुद उनके भीतर देशभक्ति कहां तिरोहित हो जाती है ? उपदेश पिलाना तो आसान है लेकिन खुद जिन्दगी में उसे उतारना एक बेहद कठिन काम है। यदि दोनों में सामंजस्य नहीं है तो क्या यह बेईमानी नहीं है ? मैं यहां ऐसी ही एक घटना का जिक्र करना चाहूँगी।

जिस वक्त देश का एक हिस्सा, उड़ीसा राज्य, समुद्री तूफान की विनाशलीला झेल रहा था, उस वक्त विशाखापट्टनम में एन सी सी का 'राष्ट्रीय नौसैनिक कैम्प' (2-13 नवम्बर) लगा हुआ था। मैं भी उस कैम्प में शामिल थी। मेरे साथ, उड़ीसा राज्य के कैडेट भी भाग ले रहे थे। चक्रवात की खबर से दुखी तो हम सभी थे, लेकिन उड़ीसा से आये साथियों में बेचैनी और घबराहट ज्यादा ही थी, और यह स्वाभाविक था। उनको यह भी नहीं पता था कि उनके अपने सगे-सम्बन्धी जीवित भी हैं अथवा नहीं, अथवा किन हालात में हैं ? लौटकर वे जाएंगे कहां ?

उड़ीसा के इन कैडेट साथियों ने अपने घर वापस जाने की अनुमति चाही। कई तो बुरी तरह रो रहे थे, बिलख रहे थे। लेकिन, कैम्प अधिकारियों ने देशभक्ति और राष्ट्र प्रेम के पाठ पढ़ाने शुरू कर दिये। उन्हें बड़े-बड़े उपदेश दिये जाने लगे। यही नहीं, देशभक्ति का उपदेश उड़ीसा से आये वे अधिकारी भी दे रहे थें, जो अपने परिवारों को सुरक्षित स्थानों पर पहुंचाकर ही कैम्प में आये थे। भला इन संवेदनहीन उपदेशों का क्या अर्थ ? इस घटना ने हम सभी को भीतर से झकझोर कर रख दिया। उड़ीसा के साथी अश्रुपूरित नेत्रों से कलेजे पर पत्थर रखकर कैम्प खत्म होने की प्रतीक्षा में दिन ही काट सकते थे।

आशा बिष्ट
डी.एस.बी. परिसर
कुमायूं विश्वविद्यालय, नैनीताल

क्रान्ति का बिगुल बजाने में सक्षम

''वक्त की धूप हमें
न शिकस्त दे पायेगी
हम वो जर्रा हैं
जो सूरज को निगल जायेंगे।''

ऐसे बुलन्द एवं ओजपूर्ण हौसले को लेकर जो आह्वान अपने किया है, निस्सन्देह व क्रान्ति का बिगुल बजायेगा और 'आह्वान' जन-जन की पुकार बनकर आपका प्रयास सार्थक करेगा।

नौजवान साथियों के साथ-साथ तमाम पाठक इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकेंगे। क्रान्तिकारी विचारों की आज देश, समाज व राष्ट्र को आवश्यकता है। आपकी पहल प्रशंसनीय है। मेरी शुभकामनाएं व बधाई स्वीकारें।

'अपनी ओर से' व दिशा छात्र समुदाय की ओर से जारी 'एक अपील' ने प्रभावित किया।

हे पथिक
संकुचित अभिलाषाओं को
दफ़न कर
नवचेतना उत्पन्न कर
सृजित कर साहित्य ऐसा
ब्रह्म शब्द ऐसा उदित हो
जन-जन में क्रान्ति झंकृत हो
ऐसे में आओ हम सब
नव प्रभात के नव दिवाकर
का मंगलमय गुणगान करें
उदित हो जीवन में नवप्रकाश
मंगलगान करे धरती-आकाश !

कु० अंजना बख्शी ''शबनम''
दमोह

घुसपैठिए

मुबारक... मुबारक... मुबारक...
कोटिशः मुबारक
तुमने
सीमा में आये
घुसपैठिये भगाये,
मेरे देश के
आन-बान-शान- पर कुर्बान
फौजियों !
तुम्हारी बहादुरी को दाद
पर
एक बात बताओगे -
तुम्हारी बीबी
के रसोई-घर में,
चाय में, काफी में,
नाश्ते की प्लेट में,
जूती में, बिस्तर पर,
कूलर में, फ्रिज में,
टी.वी. में, रेडियो में,
तुम्हारी बीबी के
नाखून पर, होंठ पर
जूड़े में, स्नान-घर में
साबुन में, तेल में
ब्रश और पेस्ट में
कहाँ नहीं हैं - घुसपैठिये ?
फौजी !
इन्हें कैसे भगाओगे ?

अजय कुमार पाण्डेय
नवानगर, बलिया

एक अपील

'आह्वान कैम्पस टाइम्स' समूचे देश में चल रहे वैकल्पिक जनमीडिया के प्रयासों की एक कड़ी है। हम सत्ता प्रतिष्ठानों, दाता एजेंसियों, पूँजीवादी घरानों एवं चुनावी राजनीतिक दलों से किसी भी रूप में आर्थिक सहयोग लेना घोर अनर्थकारी मानते हैं। हमारा वैकल्पिक मीडिया सिर्फ और जन संसाधनों के बूते पर खड़ा किया जाना चाहिए — हमारी यह दृढ़ मान्यता है।

अतः हम अपने सभी शुभचिंतकों-सहयोगियों से अपील करते हैं कि वे अपनी ओर से अधिकतम सम्भव आर्थिक सहयोग भेजकर परिवर्तन के इस हथियार को मजबूती प्रदान करें।

उनके दुःस्वप्न, हमारी विरासत और नयी सदी की उम्मीदें

नयी सदी (नयी सहस्त्राब्दि) के स्वागत में पूरी दुनिया में जश्न मनाया गया। रिकार्ड तोड़ सहस्त्राब्दि पार्टियां हुईं। बिल क्लिण्टन, महारानी एलिजाबेथ-टोनी ब्लेयर से लेकर पोप जॉन पॉल और समूची दुनिया के शासकों ने अपनी-अपनी जनता को नयी सहस्त्राब्दि के आगमन पर शुभकामनाएं दीं। बिल क्लिण्टन ने न्यूयार्क में टाइम स्क्वायर पर शताब्दी को दर्शाने वाली एक टाइम कैप्सूल का उद्घाटन करने के बाद अपने सन्देश में कहा कि "उन्हें खुशी है कि अमेरिका समृद्ध है और मजबूत अर्थव्यवस्था के साथ नई सहस्त्राब्दि में प्रवेश कर रहा है।" इस मौके पर टाइम स्क्वायर में एक बड़ी स्क्रीन लगायी गयी जो पूरे विश्व की राजधानियों में हो रहे सहस्त्राब्दि समारोहों का सीधा प्रसारण कर रही थी।

हमारा देश भी इस सनकी उल्लास में पीछे नहीं था। गोवा के समुद्र तट से लेकर पांच सितारा होटलों तक में इण्टरनेट, मोबाइल और कार वालों की दुनिया ने पूरी तड़क-भड़क और सज-धज के साथ हंगामी अन्दाज में नयी सहस्त्राब्दि का स्वागत किया। जीभर कर पटाखे छोड़े गये, शैम्पेन-बीयर की बोतलें खाली की गयीं और "आई लव माई इण्डिया" की गर्वानुभूति के साथ आनन्दातिरेक की सीमा तक नाच-गान हुआ। मध्यवर्ग का जो तबका इस जश्न में सीधे शरीक नहीं हो सका उसने भी ठंडी आहें भरते हुए, दूरदर्शनी पर्दे पर ही सही, बॉलीवुड के सितारों की चकाचौंध में नयी सहस्त्राब्दि के आगमन की सुखानुभूति-गर्वानुभूति में शरीक होने की कोशिश की। अन्ततोगत्वा, 'मिलेनियम बेबी' भी दुनिया भर में पैदा हो ही गये। हम सबने इनकी जन्मदात्री मांओं के गर्वीले चेहरे भी अखबारों में छपे देखे।

आंसुओं के समन्दर में बने ऐश्वर्य की द्वीपों और विलासिता के टापुओं में रहने वाले लोगों की खुशियों को, उनके आनन्दातिरेक को समझा जा सकता है। वे फिलहाल खुश हैं, निश्चिन्त हैं कि बीसवीं सदी खत्म होने पर समन्दर में किसी प्रचण्ड ज्वार के आने का खतरा नहीं है। इसलिए, वे हर्षातिरेक में सबकुछ भूलकर आगे ही आगे बढ़ते जाना चाहते हैं।

लेकिन, हमारे जैसे लोग जो श्मशान में बैठकर रागभैरवी गाने का लुत्फ उठाना नहीं जानते जिनकी तादाद दुनिया में बहुसंख्य है, इस सहस्त्राब्दि सन्निपात से आनन्दित होना भला कैसे गवारा कर सकते हैं। हम सब कुछ भूलकर "जो भी है यही एक पल है" की क्षणजीविता से कैसे रोमांचित हो सकते हैं। हमें तो बीसवीं सदी का अन्त भी याद है, उसका मध्यान्तर भी और उसकी शुरुआत भी।

हमें उड़ीसा के चक्रवात में हजारों मारे गये लोग, लाखों बेघर लोग और "राहत-सामग्रियों" की ओर हाथ फैलाए दृश्य याद हैं। यह भी याद है कि ऐश्वर्य-द्वीपों में रहने वाले लोग किस तरह लाखों लोगों को चक्रवात के रहमो-करम पर छोड़कर अपने सुरक्षित ठिकानों में चले गये—आखिर चक्रवात राहत कार्य को अंजाम जो देना था उन्हें! हमें पूर्वी उत्तर प्रदेश की बाढ़ याद है। हमने कानपुर के औद्योगिक कोलाहल को पिछले दस वर्षों में मरघटी सन्नाटे में तब्दील होते देखा है। हम आन्ध्र, कर्नाटक, महाराष्ट्र के उन किसानों को नहीं भूले हैं, जिन्होंने सामूहिक आत्महत्याएं कीं। हम गत वर्ष गणतंत्र दिवस पर संसद-भवन के सामने सर्वेश नामक मजदूर के आत्मदाह और उच्चतम न्यायालय के उस न्याय को भला कैसे भुला सकते हैं जिसने पर्यावरण बचाने के नाम पर लाखों लोगों के घरों के चूल्हे बुझा दिये हैं। हमें नयी सहस्त्राब्दि के ठीक अड़तालीस घण्टे पहले आत्मदाह करने वाले उड़ीसा के प्रशिक्षित बेरोजगार शिक्षकों की बेबसी भी याद है।

इस जैसे बहुत सी चीजें — अनगिनत आंसू, अनगिनत त्रासदियां — जो बीसवीं सदी की समृद्धि की सम्पूरक हैं — याद है हमें!

हिरोशिमा-नागासाकी में अमेरिकी बमों से बंजर धरती—विकलांग पीढ़ियां, नाजियों के गैस चैम्बर—यहूदियों का कत्लेआम, भारत-पाक विभाजन—ट्रेनों से आती-जाती लाशें, चेरनोबिल नाभिकीय 'दुर्घटना', भोपाल में यूनियन कार्बाइड की जहरीली गैस—जिसने रातों-रात एक जिन्दा शहर को श्मशान में बदल दिया—पनामा, ग्रेनेडा पर अमेरिकी 'कारपेट बॉम्बिंग', जनतंत्र के नाम पर इराक में नाटो बमबारी से मची तबाही का मंजर, संयुक्त राष्ट्र आर्थिक प्रतिबन्धों के कारण हर साल दवा के अभाव में दम तोड़ते लाखों इराकी बच्चे, मानवाधिकारों की रक्षा के नाम पर यूगोस्लावविया में नाटो-बमबारी के धमाके अब भी दिमागों में गूंज रहे हैं... और बाबरी मस्जिद का ध्वंस भी — सूरत-बम्बई में चमकते त्रिशूल...पादरी स्टेंस... वह सब कुछ जिसे एक जिन्दा कौम और उस कौम के जिन्दा लोग नहीं भूल सकते।

हमें कानून-व्यवस्था की बहाली के नाम पर आपात काल के दौर में किशता-गौड़ व भूमैया की फांसी भी याद है और हमें भावी आपात काल की आहटें भी सुनायी दे रही है। हमें कलकत्ता की गलियों में सातवें दशक में हजारों उन शानदार नौजवानों का 'इनकाउण्टर' भी याद है जिनके रास्ते सवालों के घेरे में हो सकते हैं, सपने नहीं। बिहार, दण्डकारण्य और रायल सीमा क्षेत्र

में आतंकवाद से निपटने के नाम पर चल रहा सरकारी आतंकवाद भी हमारी नजरों के सामने है।

कहने का मतलब कि समूची बीसवीं सदी में — युद्ध के दिनों में भी और शान्ति के दिनों में भी — पूंजीवाद-साम्राज्यवाद के उत्पादन तंत्र, राजतंत्र और समाजतंत्र ने जो तबाहियां रची हैं— वह सब कुछ, सारे दृश्य, सभी मंजर वे लोग कभी नहीं भूल सकते, जो समूची दुनिया में आज भी एक बेहतर मानवीय दुनिया के सपनों के साथ जी रहे हैं। इसलिए, क्योंकि हम जानते हैं कि त्रासदियों का विस्मरण हमारे संकल्पों को कमजोर बनाता है और हमारी तड़प को खतरनाक मुर्दा-शान्ति की ओर ले जा सकता है।

इसके साथ ही, समूची बीसवीं सदी के उन गौरवशाली संघर्षों व महान अभियानों को भी, जिन्होंने पूंजीवाद-साम्राज्यवाद के दुर्गों में भगदड़ मचा दी थी, हम कैसे भुला सकते हैं। उन महान गौरवशाली सामाजिक प्रयोगों को, जो मेहनतकश वर्ग के नेतृत्व में दुनिया के कुछ हिस्सों में अंजाम दिये गये, भूल जाने देना, उनके लिए सम्भव नहीं, जो मानवता के सुन्दर भविष्य के लिए जीते हैं और उसी के लिए मरते हैं।

1917 की महान अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति, जब मजूदर वर्ग ने पहली बार अपनी एक राज्यसत्ता कायम की और शोषण-उत्पीड़न से मुक्त एक बिल्कुल भिन्न नये समाज की दिशा में शुरुआती व्यावहारिक कदम उठाये, उपनिवेशवाद की जंजीरों से मुक्त होने के लिए एशिया-अफ्रीका-लातिन अमेरिका के देशों की जनता के महान मुक्ति संघर्ष की गाथाएं, द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान रूसी लाल सेना के हाथों मगरूर नाजी फौजों का मानमर्दन और आधे यूरोप में जनता के जनवादी गणराज्यों की स्थापना, 1949 में चीनी जनता द्वारा साम्राज्यवादी-सामन्तवादी शोषण के जुए को उतार फेंकना और पहले जनता के जनवादी गणराज्य की स्थापना और फिर समाजवाद की दिशा में आगे बढ़ने के लिए किए गये चमत्कारिक महानतम सामाजिक प्रयोग—महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति—हाथी दांत मीनारों में रहने वाली आबादी के लिए एक भीषण दुःस्वप्न है। लेकिन यह हमारी विरासत है। इसलिए, वे इन सबको जल्दी से जल्दी अपनी और जहां तक सम्भव हो जनता की स्मृतियों से मिटा देना चाहते हैं। इसलिए बीसवीं सदी के अन्तिम वर्षों में — जब चीन भी माओ-त्से-तुङ की मृत्यु के बाद सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप के देशों की तरह पूंजीवादी बिरादरी में लौट आया — तो ये कोशिशें नये वेग से शुरू हुईं और समाजवाद की मृत्यु ही नहीं बल्कि बेहतर दुनिया के सपनों की ही मृत्यु की घोषणाएं की जाने लगीं।

लेकिन 'समाजवाद के पतन' के बारे में उनकी चीख-पुकार जल्दी ही गले की घुरघुराहट में तब्दील होने लगी। तीसरी दुनिया में पूंजीवादी विकास के एक मॉडल के रूप में बहुप्रचारित "एशियाई चीते" भीगी बिल्ली बन चुके हैं। बाजार और मुनाफे का उनका भूमण्डलीय तंत्र जिन अन्तकारी रोगों-संकटों का शिकार है, उससे निजात पाने का कोई अचूक नुस्खा उन्हें नहीं मिल पा रहा है। लिहाजा आपसी छीना-झपटी और तीसरी दुनिया के देशों की जनता की लूटमार दोनों ही दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। इससे एक दूसरे नये संकट के पैदा होने की दुश्चिन्ताएं भी उन्हें सताने लगी हैं। समूची तीसरी दुनिया में उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों से बारूद का पलीता बिछता जा रहा है। बर्बर दमन के बावजूद पेरू, कोलम्बिया में क्रान्तिकारी छापामार देशी शासकों और विदेशी आकाओं को नकदम किये ही हुए हैं, मेक्सिको के चियापास प्रान्त में जपाटिस्टा किसानों के विद्रोहों ने भी उनकी नींदें हराम की ही थीं और अब बीसवीं सदी बीतते-बीतते मेक्सिको के छात्रों-नौजवानों ने भी उदारीकरण-निजीकरण के नीतियों के खिलाफ बगावत शुरू कर दी है। ईरान में भी छात्र-युवा अपने कठमुल्ला शासकों और उनके सरपरस्तों के अत्याचारों के खिलाफ सड़कों पर उतर चुके हैं। हमारे देश में भी विभिन्न कामगार वर्ग अपनी अस्तित्व की लड़ाई को नयी मंजिल में ले जाते हुए दिखायी दे रहे हैं। सदी खत्म होते-होते जो संकेत मिलने शुरू हुए हैं उन्होंने दुनिया के पूंजीवादी शासकों को बेचैन कर रखा है। ऐसे में विनाश के कगार पर खड़े होकर वे सिर्फ खुशफहमियों के सहारे ही जीवित रह सकते हैं। अपने सहस्त्राब्दि सन्देश में क्लिण्टन का यह कहना कि उनका देश एक मजबूत अर्थव्यवस्था के साथ नयी सहस्त्राब्दि में प्रवेश कर रहा है, ऐसी ही एक खुशफहमी है।

बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में ही शहीदे-आज़म भगतसिंह ने कहा था कि "आज का धनिक समाज एक ज्वालामुखी के मुंह पर बैठकर रंगरेलियां मना रहा है।" उस समय भी यह एक साहित्यिक अभिव्यक्ति मात्र नहीं थी। और आज तो यह उस समय से अधिक प्रखर सच्चाई बन चुकी है। "शोषकों के मासूम बच्चे तथा करोड़ों शोषित लोग" जिस "भयानक खड्ड पर चल रहे हैं", उससे यदि बचना है तो आज की दुनिया के रंग-ढंग को जितनी जल्दी हो सके, पूरी तौर पर उलट-पुलट करना होगा। हमें विस्मृति के अन्धेरे से बाहर निकलकर गुजरी सदी की अपनी विरासत को सहेजना होगा और तैयारियों को तेज करना होगा। वह दिन अब फिर से नजदीक आता दिख रहा है, जब शान्त महासमुद्रों में प्रचण्ड ज्वार उठेंगे, जब ऐश्वर्य की मीनारें और विलासिता की टापू इन प्रचण्ड जलराशियों में जलसमाधि ले लेंगे।

इसलिए, आज निराशा की गुफाओं से समाज को बाहर निकालने के लिए अनथक प्रयासों की जरूरत है। सुषुप्त आत्माओं के आवाहन की जरूरत है। सर्वोपरि तौर पर यह जिम्मेदारी युवा वर्ग की है क्योंकि युवा रक्त की गर्मी से ही नाउम्मीद की बर्फ पिघल सकती है। बीसवीं सदी स्वयं इसका प्रमाण है। और यह भी हमारी एक विरासत है। शिम्बोर्स्का के शब्दों में — "हमें विरासत में उम्मीद भी मिली है।"

गो. वि. वि. छात्रसंघ की नयी आचार संहिता
परिसरों के गैर जनतांत्रीकरण की दिशा में एक और कदम

..... आंखों पर पट्टी ..... जुबान पर ताले ..... हाथों में किताब .....
खाकी वर्दी ..... डण्डे ..... संगीनें ..... बूट .....
खामोश! परिसर में ''जनतंत्र'' कायम है!

• सुनील चौधरी

पिछले एक दशक में देश के शिक्षा जगत में बाजारीकरण-व्यवसायीकरण की प्रवृत्ति के साथ-साथ निरंकुशता और गैरजनतांत्रीकरण की प्रवृत्तियां भी बढ़ी हैं। विगत सहस्त्राब्दि के अन्तिम दशक की शुरुआत में नरसिहंराव सरकार द्वारा उदारीकरण-निजीकरण की नयी आर्थिक नीतियों के अन्तर्गत शिक्षा क्षेत्र के बाजारीकरण के साथ छात्रों के जनतांत्रिक अधिकारों के हनन का एक अभूतपूर्व नया दौर शुरू हुआ। बाद की संयुक्त मोर्चा सरकार ने भी इसे आगे बढ़ाया और भाजपा गठबन्धन की वर्तमान सरकार ने नयी आर्थिक नीतियों के दूसरे आक्रामक-खतरनाक दौर की शुरुआत के साथ इसे पूर्णतः एक उद्योग बना देने की गति को और तेज कर दिया है। इससे उत्पन्न छात्र-असंतोष से निपटने के लिए अपने तथाकथित जनतंत्र के बचे-खुचे चीथड़े को भी उतार फेंककर छात्रों के जनतांत्रिक अधिकारों को छीनने-कुचलने की नयी-नयी साजिशें भी तेज कर दी हैं। इसी के तहत निरंकुशता के एक नये चक्र की शुरुआत हुई है जो सीधे-सीधे आम छात्रों के पढ़ने के अधिकारों और अपनी समस्याओं के समाधान के लिए एक मंच पर आने के न्यूनतम जनतांत्रिक अधिकारों के भी खिलाफ है। इसका एक ताजा उदाहरण गोरखपुर विश्वविद्यालय कार्यपरिषद द्वारा गैरजनतांत्रिक और मनमाने तरीके से मौजूदा छात्रसंघ के संविधान में संशोधन कर नयी आचार संहिता का बनाया जाना है। यह आम छात्रों के जनतांत्रिक अधिकारों पर किया गया भीषण कुठाराघात है।

जी हां, गो.वि.वि. छात्रसंघ संविधान में संशोधन के प्रस्ताव को बिना छात्रसंघ कार्यकारिणी के दो तिहाई बहुमत से पास किये और आम सभा (जनरल असेम्बली) के आधे सदस्यों द्वारा स्वीकृत किये बगैर छात्रसंघ के वर्तमान संविधान को कुलपति महोदय ने अपने संरक्षकत्व में बदल कर एक नयी आचार संहिता बनायी है और आने वाले समय के लिए अपने खतरनाक मंसूबों के संकेत दे दिये हैं। वर्ष 1958-59 में हरेराम मिश्र के संयोजकत्व में गोरखपुर विश्वविद्यालय छात्रसंघ संविधान सभा द्वारा जारी और गो. वि.वि. के रजत जयन्ती वर्ष 1982-83 में छात्रसंघ कार्यसमिति द्वारा सम्पादित संविधान के अनुच्छेद-5 धारा-1 (र) (जिसमें संविधान संशोधन पर विचार के लिए आम सभा की बैठक होना और कुलपति अथवा उनके द्वारा मनोनीत प्रतिनिधि की उपस्थिति आवश्यक है) की धज्जियां उड़ाते हुए कुलपति महोदय ने छात्रसंघ पदाधिकारियों और आम छात्रों को चेतनहीन, भेड़-बकरी समझते हुए अपने को स्वयंभू न्यायाधीश बनाकर छात्रसंघ संविधान में संशोधन कर और नयी आचार संहिता बनाकर, उसे लागू करवाने की जिम्मेदारी जिला प्रशासन को सौंप दी है। जो खाकी वर्दी और डण्डे के दम पर वि.वि. परिसर में ''जनतंत्र'' लागू करवायेगा। वैसे कुलपति महोदय से इससे कम की उम्मीद भी नहीं की जा सकती क्योंकि ''जनतंत्र'' लागू करवाने के, वे पुराने शौकीन हैं और अपने छः महीने के कार्यवाहक कार्यकाल में 20 जनवरी 1994 को वि. वि. परिसर में आम छात्र-छात्राओं पर लाठियां तोड़वाकर अपने ''शौर्य'' का प्रदर्शन भी कर चुके हैं। गजब का ''जनतंत्रप्रेम'' है कुलपति महोदय का और उसके प्रदर्शन का तरीका उससे भी अजब !

> **शिक्षा का बाजारीकरण और परिसरों में बढ़ रही निरंकुशता की प्रवृत्ति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जैसे-जैसे शिक्षा के बाजारीकरण से उपजा छात्र-युवा असंतोष बढ़ रहा है, वैसे-वैसे शासन-प्रशासन अपने दमनतंत्र को और अधिक चाक-चौबन्द कर रहा है।**

वि.वि. प्रशासन द्वारा बनायी गयी नयी आचार संहिता आम छात्रों के जनतांत्रिक अधिकारों पर खुला कुठाराघात है। इसके माध्यम से परिसर का अराजनीतिकरण और गैरनजतांत्रीकरण करने की साजिशें की जा रही हैं। पिछले दिनों उ० प्र० के राज्यपाल सूरजभान ने पत्रकार वार्ता में कहा भी था कि 'उम्र की सीमा निर्धारित कर देने से परिसर को अराजकता से मुक्ति मिलेगी और पेशेवर छात्र राजनीति पर अंकुश लगेगा।' कुछ इसी तरह की बात सिंचाई व उच्च शिक्षा मंत्री ओमप्रकाश सिंह ने भी कही कि 'उच्च-शिक्षा के क्षेत्र में तीन प्राथमिकताएं हैं

'सत्र का नियमन, नियमित कक्षाएं और कैम्पस को अवांछित व पेशेवर छात्र राजनीति से मुक्ति दिलाना।' और इसी के व्यावहारिक अमल के रूप में है गो.वि.वि. छात्रसंघ की नयी आचार संहिता।

आइये, कुलपति महोदय द्वारा आम छात्रों के लिए जारी किये गये हिटलरी फरमान— नयी आचार संहिता पर एक नजर डालें :-

- छात्रसंघ चुनाव में प्रत्याशियों की अधिकतम आयुसीमा 25 वर्ष निर्धारित। इसके लिए प्रत्याशी को एक शपथपत्र देना होगा।
- छात्रसंघ में छात्राओं को 33% प्रतिनिधित्व। यह व्यवस्था अध्यक्ष, उपाध्यक्ष एवं मंत्री के पदों पर लागू नहीं होगी।
- न्यायिक समिति का पद समाप्त।
- पुरुष प्रत्याशियों का चुनाव प्रचार हेतु महिला छात्रावास में प्रवेश पर प्रतिबन्ध।
- चुनाव प्रचार में वि.वि. परिसर, सार्वजनिक स्थलों व राजकीय भवनों, नागरिकों के आवासों, दुकानों पर पोस्टर-बैनर लगाने, 'वालपेन्टिंग' (दीवार-लेखन) करने पर प्रतिबन्ध। जुलूस पर भी रोक।
- चुनाव के बाद तीन दिन में खर्च का विवरण देना अनिवार्य।
- प्रत्याशी भारतीय दण्ड-संहिता तथा वि.वि. की अनुशासन-संहिता के अन्तर्गत किसी आपराधिक घटना में लिप्त एवं दण्डित नहीं होना चाहिए।
- प्रत्याशी को किसी भी राजनीतिक पार्टी अथवा उसकी युवा शाखा के द्वारा आगामी छात्रसंघ चुनाव के लिए कोई सहायता प्राप्त नहीं होनी चाहिए।

ऐसा पहली बार हुआ है कि वि.वि. प्रशासन ने नयी आचार संहिता को लागू और उसका पालन करवाने की जिम्मेदारी जिला प्रशासन को सौंप दी है।

अब, आइये, जरा इस नयी आचार संहिता के विभिन्न बिन्दुओं की चीरफाड़ की जाए। और यह देखा जाए कि किस तरह पेशेवर छात्र राजनीति का सफाया करने और अराजकता पर अंकुश लगाने की "चिन्ता" में घुले जा रहे उच्च शिक्षा के ठेकेदारों और जनतंत्र के पहरेदारों द्वारा बनायी गयी "ठोस, कारगर और व्यावहारिक" योजना एकदम अव्यवाहारिक है। किस तरह देश के संविधान की भांति इसका स्वरूप भी कागजी शगूफेबाजी है और किस तरह इसका चरित्र घनघोर छात्रविरोधी-जनतंत्रविरोधी है।

वि.वि. प्रशासन ने नयी आचार संहिता के अन्तर्गत प्रत्याशी की आयुसीमा 25 वर्ष निर्धारित करने के पीछे यह हास्यास्पद तर्क दिया है कि इससे पेशेवर छात्र राजनीति का खत्मा होगा और अराजकता से मुक्ति मिलेगी। बहुत खूब ! यानि कि 25 वर्ष से अधिक उम्र वाले छात्रनेता ही परिसर में अराजकता फैलाते हैं। मान लीजिए, यदि इस नियम के लागू होने के बाद भी वि.वि०. में अराजकता बनी रही, तो क्या कुलपति जी इस आयुसीमा को घटाकर क्रमशः 20 वर्ष और 15 वर्ष तक लायेंगे ? (और तब, वि.वि. में इस उम्र का कोई छात्र रहेगा ही नहीं, लिहाजा छात्रसंघ भंग।) दरअसल वि.वि. प्रशासन यह चाहता है कि अपरिपक्व, अनुभवहीन और अक्षम पदाधिकारी छात्रसंघ में पहुंचें और प्रशासन की हां में हां मिलायें। ताकि छात्रसंघ को एक रीढ़विहीन संस्था में बदला जा सके। यदि वि.वि. में अध्ययन और मतदान करने की कोई आयुसीमा नहीं है तो फिर प्रत्याशी की ही आयुसीमा क्यों? लेकिन फिर भी यह महज एक तकनीकी तर्क है, जिसे अन्य छात्रनेता भी दे रहे हैं। मसला इससे अधिक संगीन है। प्रशासन यह बखूबी जानता है कि यदि प्रत्याशी 25 वर्ष से अधिक उम्र के होंगे तो वे अधिक परिपक्व होंगे, उन्हें छात्र-समस्याओं की ज्यादा समझ होगी और देश की आर्थिक-राजनीतिक व्यवस्था से शिक्षा व्यवस्था के सम्बन्ध को भी वे भलीभांति समझ सकेंगे। वि.वि. प्रशासन छात्रसंघ के

अगले सत्र में भारी शुल्क वृद्धि और सीटों में कटौती

विगत 9 जनवरी को राजधानी लखनऊ में प्रदेश के राज्यपाल सूरजभान (जो प्रदेश के सभी विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति भी हैं) की अध्यक्षता में कुलपतियों का एक सम्मेलन हुआ। गोरखपुर विश्वविद्यालय के कुलपति सहित 14 विश्वविद्यालयों के कुलपति सम्मेलन में शामिल हुए। प्रदेश के उच्च शिक्षा मंत्री ओम प्रकाश सिंह भी मौजूद थे। इस बैठक में कई ऐसे अहम फैसले लिए गये हैं, जिसके तहत आम गरीब परिवारों के छात्रों के लिए उच्च शिक्षा अर्जित करना लगभग नामुमकिन हो जायेगा, छात्रों के जनतांत्रिक अधिकारों को लगभग पूर्णतया छीन लिया जायेगा तथा विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता लगभग पूरी तरह समाप्त हो जायेगी। सम्मेलन में हुए फैसलों के कुछ ही दिन बाद विगत 24 जनवरी को इस सम्बन्ध में शासनादेश भी जारी कर दिये गये हैं। महत्वपूर्ण फैसलों पर एक नजर :

- प्रदेश सरकार विश्वविद्यालयों के बढ़ते खर्च को वहन नहीं करेगी। सारे अनुदान 1998-99 की राशि पर ही दिये जायेंगे। इसलिए, विश्वविद्यालय अपने अस्तित्व के लिए अपने संसाधन खुद जुटायें। यानी, अगले सत्र से भारी शुल्कवृद्धि। शुल्कवृद्धि को रामरूप बनाने के लिए शासन बढ़ी हुई राशि को निर्धारित कर देगा। कुमायूं विश्वविद्यालय में मौजूदा सत्र से ही यह शुल्क वृद्धि लागू की जा चुकी है।
- उच्च शिक्षा की "गुणवत्ता" को और बढ़ाने के लिए अगले सत्र से सीटों में भारी कटौती। छात्रों के विरोध से निपटने के लिए कुलपति यह कहकर पल्लू झाड़ लें कि यह शासन का निर्णय है। शासन निपट लेगा।
- छात्रसंघों को पूरी तरह पंगु और विश्वविद्यालय प्रशासन की जी-हुजूरिया संस्था बनाने के लिए गोरखपुर विश्वविद्यालय की तर्ज पर छात्रसंघों को डालने (जिसका ब्यौरा मुख्य आलेख में दिया गया है) वाले कदमों का अनुमोदन।
- सत्र नियमन के नामपर प्रवेश और परीक्षा की अन्तिम तिथियां घोषित और 75 प्रतिशत उपस्थिति की अनिवार्यता लागू करने का निर्णय। ऊपरी तौर पर छात्रों का हित दिखायी पड़ने वाले इस निर्णय के पीछे की असली मंशा छात्रों की सामाजिक-राजनीतिक गतिविधियों को सीमित करना एवं छात्रों पर शासन-प्रशासन के दण्डे का भय आरोपित करना है।
- पूरे प्रदेश में एक समान पाठ्यक्रम लागू। यह विश्वविद्यालयों की अकादमिक स्वायत्तता पर कुठाराघात है। उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रमों को प्राइमरी स्तर के पाठ्यक्रमों जैसा समरूप बनाने का यह निर्णय वैचारिक स्वतंत्रता को हड़पना और उच्च शिक्षा को सत्ता-तंत्र द्वारा निर्देशित शिक्षा में तब्दील करना है। यह भाजपा द्वारा शिक्षा संस्थानों का भगवाकरण करने की मुहिम का ही एक अंग है।

माध्यम से शिक्षा के सच्चे उद्देश्य को आम छात्रों तक पहुंचाने की किसी भी सम्भावना को कुचल देना चाहता है। अब छात्रसंघ संविधान के अनुच्छेद-1, धारा-2(अ) एवं (य) में छात्रसंघ के लक्ष्य और अभीष्ट के अन्तर्गत वर्णित 'छात्रों के जीवन 'को सांस्कृतिक, सामाजिक एवं बौद्धिक दृष्टि से सम्पन्न बनाकर' 'समाज को चैतन्य बनाने, विकसित करने एवं व्यवस्थित करने के उद्देश्य से कार्यक्रमों एवं क्रिया-कलापों को प्रारम्भ करने और उसकी व्यवस्था' का उद्देश्य महज कागजी बनकर रह जायेगा। सच्चाई यह है कि वि.वि. प्रशासन परिसर की ''पेशेवर छात्र राजनीति'' से कतई चिन्तित नहीं है। आयुसीमा का बैरियर लगाकर प्रगतिशील विचारों और शिक्षा के सच्चे उद्देश्य को आम छात्रों तक पहुंचाने वाले प्रतिनिधियों को छात्रसंघ में पहुंचने से रोकना चाहता है। शासन-प्रशासन इस बात से खौफजदा है कि सरकार की वर्तमान शिक्षा नीतियों से असन्तोष का जो लावा भीतर ही भीतर पक रहा है उसे संगठित करने का जो काम, चाहे यह जितने निम्न स्तर पर क्यों न हो, क्रान्तिकारी छात्र संगठनों के प्रतिनिधि कर रहे हैं उससे परिसर में देश के क्रान्तिकारी परिवर्तन के भावी सिपाही तैयार हो रहे हैं। इसलिए ऐसे तत्त्वों को चुनाव लड़ने से ही वंचित कर दो।

गो.वि.वि. प्रशासन ने नयी आचार संहिता में छात्राओं को छात्रसंघ में 33 प्रतिशत प्रतिनिधित्व देने का प्रावधान किया है। यह ठीक वैसे ही है, जैसे लोकसभा चुनावों में महिलाओं को दिया गया 33 प्रतिशत आरक्षण। एक शगूफेबाजी ! जिस प्रकार देश के नीति-निर्धारकों और राजनीतिज्ञों को महिलाओं की चुनाव में भागीदारी को लेकर चिन्ता हुई थी, ठीक उसी प्रकार वि.वि. प्रशासन और कुलपति महोदय को भी छात्राओं की छात्रसंघ चुनाव में भागीदारी की चिन्ता हुई है। पुरुष प्रधान समाज और कम राजनीतिक चेतना के करण देश की राजनीति में मिले 33 प्रतिशत आरक्षण का फायदा, महिलाएं कितना उठा पा रहीं हैं, यह सर्ववंदित है। गो.वि.वि. में छात्राओं की स्थिति तो और भी बदतर है। परिसर के निरंकुश माहौल, अपनी कम राजनीतिक चेतना और पारिवारिक दबावों के चलते कभी-कभार इक्का-दुक्का छात्राएं ही चुनाव में खड़ी हो पाती हैं। ऐसे में छात्रसंघ कार्यकारिणी के 32 पदों में से 9 आरक्षित पद छात्राओं से कितना भर पायेंगे, यह तो भविष्य ही बताएगा। वि.वि. प्रशासन यह जानता है कि परिसर में छात्राओं की राजनीति में सक्रियता की वर्तमान स्थिति को देखते हुए, ज्यादातर वे पद खाली ही रहेंगे और यदि किसी तरह वे भर भी गये तो उनकी कम राजनीतिक चेतना के कारण, उन्हें भी अन्य कम परिपक्व पदाधिकारियों के साथ आसानी से निर्देशित किया जा सकेगा।

न्यायिक समिति के पांच पदों को भी समाप्त करने के पीछे प्रशासन की मंशा यही है कि छात्रसंघ कार्यकारिणी में पदाधिकारियों की संख्या कम से कम रहे।

छात्रसंघ चुनाव में छात्राओं द्वारा भागीदारी करने की वि.वि. प्रशासन की चिन्ता का पोपलापन इस बात से जाहिर हो जाता है कि नयी आचार संहिता के अन्तर्गत चुनाव प्रचार हेतु पुरुष प्रत्याशियों का महिला छात्रावास में प्रवेश वर्जित कर दिया गया है। तर्क यह है कि इससे अराजकता पर अंकुश लगेगा। यह समस्त पुरूष प्रत्याशियों और आम छात्रों का वि.वि. प्रशासन द्वारा किया गया खुला अपमान है। वि.वि. प्रशासन का यह तर्क अपने आप में ही अन्तरविरोधी और समझ से परे है कि जब 25 वर्ष आयुसीमा की बाध्यता लागू करके ''अराजकों'' को चुनाव से वंचित कर दिया गया, तो ये नये ''अराजक'' कहां से पैदा हो गये ? यह बात तो छात्राओं की चुनाव में भागीदारी बढ़ाने के खिलाफ जाती है। वैसे ही वर्तमान पुरुषप्रधान समाज में महिलाओं का पुरूषों से पार्थक्य और अलगाव बना हुआ है और वि.वि. प्रशासन पुरूष प्रत्याशियों का महिला छात्रावास में प्रवेश वर्जित कर इस अलगाव को और

कुलपति महोदय की कल्पनाओं का विश्वविद्यालय

(अभी कुछ दिनों पूर्व गो.वि.वि. के कुलपति महोदय ने एक अखबार के संवाददाता के साथ साक्षात्कार के दौरान अपनी कल्पना के विश्वविद्यालय को साकार करने की बात की थी। आइये, कल्पना की जाए, कुलपति महोदय की कल्पनाओं के विश्वविद्यालय की।)

ऊंची चहारदीवारी... कंटीले तार
पुलिस-पी.ए.सी. ... खाकी वर्दी..... बूट
लाठी-डण्डे-संगीनें... 'वज्र'
... और पिन ड्राप साइलेण्स
आंखों पर पट्टी... जुबान पर ताले
हाथों में किताब लिए लाइन में लगे छात्र
(कुलपति महोदय परिसर में 'राउण्ड' पर–छात्रों की आंखों की पट्टियां व जुबान पर लगे ताले खुले!)
सिस्टम कैसा है, सी.ओ. यूनिवर्सिटी ?
फाइन सर !
एनी प्राब्लम, चीफ प्राक्टर ?
नो सर !
डिसिप्लिन ?
कायम सर !
क्लासेज चल रहे हैं ?
यस सर !
अराजकता ?
नो सर !
पालिटिक्स ?
नो सर !
(अब, छात्रों से)
एनी प्राब्लम, स्टूडेण्ट्स ?
सारे छात्र : नो सर !
आई-कार्ड है ?
सारे छात्र : यस सर !
एस.एस.पी. की सील ?
सारे छात्र : यस सर !
कोर्ट की डिक्लियरेशन ?
सारे छात्र : यस सर !
गुड, वेरी गुड
यू आर दि रीयल स्टूडेण्ट्स ऑफ अवर यूनिवर्सिटी।
माई ओबिडिएण्ट ब्वॉएज-आई ऐम प्राउड ऑफ यू!

बढ़ाने का ही काम कर रहा है तथा दूसरी ओर शगूफेबाजी के तहत छात्राओं के लिए 33 प्रतिशत प्रतिनिधित्व की बात कर रहा है। वि.वि. प्रशासन के इस गड़बड़झाले को क्या कुलपति महोदय सुलझायेंगे ? यह आम छात्राओं की जागरुकता और सम्मान हासिल करने के प्रयास को हतोत्साहित करने की साजिश है, जो पुरुष वर्चस्ववादी सोच को प्रदर्शित करता है।

नयी आचार संहिता के अन्तर्गत वि. वि. प्रशासन ने पोस्टर-बैनर-वाल पेन्टिंग (दीवार-लेखन)-जुलूस आदि पर प्रतिबन्ध लगाकर छात्रों की अभिव्यक्ति की आजादी पर खुला हमला बोल दिया है। अभी तक तो वि. वि. परिसर के अन्दर प्रचार कार्य को तरह-तरह से प्रतिबन्धित करने की कोशिश हो ही रही थी, लेकिन अब वि.वि. प्रशासन ने अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए वि.वि. परिसर, सार्वजनिक स्थलों व राजकीय भवनों, नागरिकों के आवासों, दुकानों पर 'वाल-पेन्टिंग' पर प्रतिबन्ध लगा दिया है और इसका पालन करवाने की जिम्मेदारी जिला प्रशासन को सौंप दी है। नयी आचार संहिता का सबसे खतरनाक बिन्दु यही है कि छात्रसंघ चुनाव को ''ठीक तरीके'' से अंजाम देने के लिए खाकी वर्दी और डण्डे के जोर पर ''जनतंत्र'' कायम करना। वि.वि. प्रशासन ने प्रत्याशियों के प्रचार के लिए कोई सूचना पट्ट भी नहीं बनवाया है, सिर्फ प्रचार के तरीकों पर रोक लगा दी है और यह सब ''जनतंत्र'' कायम करने के नाम पर हो रहा है। छात्र राजनीति के गिरते स्तर के बावजूद बी.एच.यू. में छात्रसंघ चुनाव में प्रत्याशियों के विचारों की अभिव्यक्ति के लिए 'क्वालीफाइंग स्पीच' का सार्वजनिक आयोजन होता था। हालांकि आज, वहां पर अराजकता दूर करने के नाम पर छात्रसंघ को भंग किया जा चुका है। आखिर, फिर प्रत्याशी अपना प्रचार कैसे करेंगे ? क्या पर्चे छापकर ? क्या सभी प्रत्याशियों द्वारा पर्चे छापना सम्भव हो पायेगा ? इतने अधिक आर्थिक संसाधन आयेंगे कहां से?

असल में मामला यह है कि प्रचार के तरीकों पर प्रतिबन्ध लगाकर और ''साफ-सुथरा'', 'स्वच्छ-स्वस्थ' जनतंत्र लागू कर वि. वि. प्रशासन अपने प्रहार का असली निशाना छात्र राजनीति के व्यवस्थापरत पहरुओं को नहीं, बल्कि परिवर्तनकामी विचारों की वाहक शक्तियों को बनाया है। उन शक्तियों को जो- देश की आर्थिक-राजनीतिक व्यवस्था और शिक्षा व्यवस्था में हो रहे खतरनाक बदलावों के दुष्परिणामों से असंतुष्ट व्यापक छात्र-युवा आबादी को समाज के अन्य वर्गों के आन्दोलनों के साथ गोलबन्द एवं संगठित कर एक नये मानवीय समाज की स्थापना के लिए संघर्ष करते हुए परिसरों में आम छात्रों तक 'शिक्षा का सच्चा उद्देश्य शोषित, उत्पीड़ित मानवता की मुक्ति' का संदेश पहुंचा रहे हैं। इससे भयाक्रांत वि.वि. प्रशासन ने जिला प्रशासन से नयी आचार संहिता को लागू और उसका पालन करवाने की गुहार लगायी है। अब जिला प्रशासन खाकी वर्दी पहन व हाथों में डण्डा लेकर आम छात्रों को निदेशित कर जनतंत्र कायम करेगा एक निर्देशित जनतंत्र। यह है राज्यसत्ता का घनघोर छात्रविरोधी और जनतंत्र विरोधी चरित्र। जिसे उदयप्रकाश ने अपनी कविता में व्यक्त भी किया है-

''... प्रजा यदि तंत्र से टकराती है कहीं
तो तंत्र की हिफाजत में तैनात
बन्दूक की नाल से बोलती है
राज्यसत्ता
सुनो ! ऐ मेरी प्यारी-प्यारी प्रजा
तुम्हें तंत्र के भीतर ही
प्रजा होने का हक है। ...''

अभी कुछ वर्षों पूर्व हुए पूरे देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों के कुलपतियों के सम्मेलन में नयी आर्थिक नीतियों के वर्तमान दौर में महंगी होती जा रही शिक्षा और बढ़ती बेरोजगारी से त्रस्त व्यापक छात्र-युवा आबादी के आक्रोशों-विद्रोहों को कुचलने-दबाने के लिए विभिन्न विश्वविद्यालयों में पुलिस चौकियां स्थापित करने, छात्रसंघों को खत्म करने और परिसरों को ''राजनीतिक कोलाहल'' एवं ''शोरगुल'' से मुक्त कर एक प्राइमरी स्कूल में तब्दील कर छात्रों को, जी सर... जी सर, करने वाले एक अचिन्तरशील प्राणी में बदल कर जी हुजूरिया बनाने की बात की गयी थी। इसी क्रम में धीरे-धीरे विभिन्न विश्वविद्यालयों को प्रयोगस्थली बनाते हुए पुलिस चौकियां स्थापित की जाने लगीं, वर्षों से संघर्षों द्वारा अर्जित छात्रसंघ को भंग किया जाने लगा, आई.ए.एस., आई.पी. एस. व अन्य प्रशासनिक अधिकारियों को कुलपति नियुक्त किया जाने लगा। अभी कुछ समय पहले आगरा वि.वि. का कुलपति एक आइ.पी.एस. अधिकारी को बनाया गया था। पहले तो विश्वविद्यालयों में छात्रों की शैक्षिक-रचनात्मक जागृति के लिए शिक्षाविदों को कुलपति बनाया जाता था, लेकिन अब छात्रों को 'डील' करने, दबाने-कुचलने और दमन करने के लिए प्रशासनिक कामकाज निपटाने में निपुण अधिकारियों को कुलपति के रूप में नियुक्त किया जा रहा है जो शिक्षा के क्षेत्र में गैर जनतांत्रीकरण और निरंकुशता की नयी खतरनाक प्रवृत्ति का द्योतक है।

गो.वि.वि. छात्रसंघ चुनाव में प्रत्याशियों की भागीदारी के प्रति एक और बैरियर लगाया गया है कि प्रत्याशी किसी आपराधिक घटना में लिप्त और दण्डित न हुआ हो (भले ही वह बेकसूर और निर्दोष रहा हो)। खैर, न्याय-व्यवस्था का खुलासा क्या किया जाए अपने कार्यवाहक कार्यकाल में निहत्थे व निर्दोष छात्र-छात्राओं पर बर्बर व जालिमाना लाठीचार्ज करवाने वाले कुलपति महोदय जब खुद ही स्वयंभू न्यायाधीश बन बैठे हैं। एक अपराधी के हाथ में कानून की किताब यानि बन्दर के हाथ में उस्तरा ! एक-दूसरे के प्रति अन्तरविरोधी चरित्र वाले बिन्दुओं से भरी इस नयी आचार संहिता में एक और हास्यास्पद बात यह है कि प्रत्याशी को किसी भी राजनीतिक पार्टी अथवा उसकी युवा शाखा

के द्वारा आगामी छात्रसंघ चुनाव में कोई सहायता प्राप्त नहीं होनी चाहिए। यह भी एक शगूफेबाजी है। मान लिया जाए कि 'आन दि टेबुल' कोई सहायता नहीं प्राप्त है। लेकिन 'अन्डर दि टेबुल' मिलने वाली सहायता को कुलपति महोदय की कौन-सी पारदर्शी दृष्टि देख पायेंगी ? खैर कुलपति महोदय तो सर्वव्यापी और सर्वज्ञानी हैं जो टेबुल के नीचे, दीवार के आरपार और जमीन के अन्दर तक देख सकते हैं। हम तो चकित, विस्मित हैं कुलपति महोदय की दृष्टि की भेदनक्षमता पर !

गो.वि.वि. छात्रसंघ की नयी आचार संहिता के मुद्दे पर तमाम छात्रनेता परस्पर विरोध और समर्थन के दो खेमों में बंट चुके हैं। एक खेमे को आगामी चुनाव में दावेदारी की जमीन खाली मिलने की खुशी है, तो दूसरे को अपनी दावेदारी खो देने का गम। दोनों में से किसी को छात्रहितों की चिन्ता नहीं है, दोनों अपना-अपना राग अलाप रहे हैं। वि.वि. प्रशासन के इस कठोर कदम के खिलाफ महज तकनीकी और कानूनी लड़ाई लड़ रहे हैं, इलाहाबाद-लखनऊ की अदालतों की दौड़ लगा रहे हैं और छात्र राजनीति के गैरजनतांत्रीकरण के खिलाफ संघर्ष की सिर्फ कवायदें कर आन्दोलन को एक संकीर्ण परिप्रेक्ष्य में ले रहे हैं। जबकि बात सिर्फ इतनी ही नहीं है। जो कुछ हो रहा है उसके जिम्मेदार भी एक हद तक वही हैं। छात्र राजनीति के विस्तृत, व्यापक और गम्भीर उद्देश्यों को संकीर्ण कर परिसर को एम.पी., एम.एल.ए. बनने के ट्रेनिंग सेण्टर बनाने, निहित स्वार्थों की पूर्ति करने, ठेका-पट्टी और दबदबा कायम कर आम छात्रों की राजनीतिक चेतना को भोंथरा बनाकर छात्र राजनीति को पतनशीलता के कगार पर पहुंचाने के लिए जिम्मेदार छात्रनेताओं की वजह से निरंकुशता की जमीन तैयार हो रही है।

नयी आचार संहिता का समर्थन आम छात्रों का एक हिस्सा भी कर रहा है, जो छात्रों में पनप रही अराजनीतिकरण, कैरियरवाद, आत्मकेन्द्रण एवं असंपृक्त सोच की प्रवृत्ति को बताता है। राजनीति से दूर... शान्त बैठकर... अध्ययनरत और आज के कटु सामाजिक यथार्थ से कटकर व्यक्तिगत उन्नति के सपने देखने वाले और पढ़ाई की एक-एक सीढ़ी चढ़ते जाने के साथ-साथ अपने एक-एक सपनों को अपनी जिन्दा आंखों के सामने दम तोड़ते देख एक अंधे भविष्य में जीने वाले ऐसे छात्र-नौजवान निरंकुशता को सामाजिक आधार मुहैया कराते हैं, उसके लिए खाद-पानी का काम करते हैं। निराशा, नियतिवाद और भाग्यवाद की ऐसी ही स्थिति में हिटलर और मुसोलिनी जैसे तानाशाहों का उदय होता है।

सबसे खतरनाक बात यह है कि गो.वि.वि. प्रशासन छात्रसंघ की नयी आचार संहिता लागू व उसका पालन करवाने की जिम्मेदारी जिला प्रशासन को सौंप दी है, जो खाकी वर्दी और लाठी-डण्डे के दम पर आम छात्रों को निर्देशित कर परिसर में "जनतंत्र" लागू करवायेगा -एक निर्देशित जनतंत्र।

इसलिए आज जरूरत है छात्रों-नौजवानों को हताशा-निराशा की अपनी आत्मघाती मानसिकता से बाहर निकलने की, संघर्षों से अर्जित अपने जनतांत्रिक अधिकारों के छिनते जाने के खिलाफ सशक्त लड़ाई लड़ने की और एक व्यापक क्रान्तिकारी छात्र-युवा आन्दोलन खड़ा करने की। आज परिसरों में बढ़ रही निरंकुशता की प्रवृत्ति का जबरदस्त और कारगर प्रतिरोध करना होगा। परिवर्तनकामी विचारों की वाहक शक्तियों को एक मंच पर आकर अभिव्यक्ति की आजादी पर खुला हमला बोलने के खिलाफ जवाबी हमला बोलकर आम छात्रों-नौजवानों की क्रांतिकारी एकजुटता कायम करनी होगी। देश भर में शिक्षा के क्षेत्र में बढ़ रही निरंकुशता व गैरजनतांत्रीकरण की प्रवृत्ति के खिलाफ एकजुट होकर दमन विरोधी एक छात्रमोर्चा बनाना होगा और इस लड़ाई को एक सही और व्यापक परिप्रेक्ष्य देकर समाज के अन्य क्षेत्रों में बढ़ रही निरंकुशता की प्रवृत्ति के खिलाफ अन्य मेहनतकश वर्गों को साथ में लेना होगा, तभी जाकर इसके खिलाफ एक कारगर और मुकम्मिल लड़ाई लड़ी जा सकती है। छात्रों-नौजवानों के आदर्श नायक शहीदे आज़म भगत सिंह ने कहा भी है कि **"विद्यार्थियों को पढ़ने के साथ पालिटिक्स का भी ज्ञान हासिल करना चाहिए... यह सच है कि स्वतंत्रता के युद्ध में विद्यर्थियों ने मौत से टक्कर ली है। क्या परीक्षा की इस घड़ी में वे उसी प्रकार की दृढ़ता और आत्मविश्वास का परिचय देने से हिचकिचायेंगे ?"**

शिक्षा का बाजारीकरण करते जाने से, फीसें बढ़ाने, सीटे घटाने तथा अन्य उपायों द्वारा उच्च शिक्षा को अमीरों की बपौती बनाते जाने से आम छात्र-नौजवानों का एक बड़ा हिस्सा सड़क पर लाकर खड़ा किया जा रहा है। इसे व्यापक छात्र-युवा आबादी के अन्दर असंतोष घनीभूत होता जा रहा है। भूमण्डलीकरण के दौर की तमाम नीतियों से पूरा समाज एक भीषण विस्फोट की ओर खिसकता जा रहा है। इस भावी विस्फोट में भाग लेकर और उसे एक सुनिश्चित दिशा देकर क्रान्तिकारी परिवर्तन करने की जिम्मेदारी संवेदनशील और इन्साफपसन्द छात्रों-नौजवानों के कन्धों पर है, जो अपनी पूरी ताकत, समय और सर्वोत्तम शक्तियों का समर्पण कर क्रान्तिकारी परिवर्तन में भाग लेंगे। इसलिए छात्रों-नौजवानों को आज पढ़ाई करने के साथ ही लड़ाई लड़ने का भी फैसला करना होगा क्योंकि यह हमारे अस्तित्व के साथ-साथ शिक्षा के सच्चे उद्देश्य को पूरा करने व उम्मीदों-सपनों से भरपूर नौजवान जिन्दगी की चाहत की लड़ाई है।

❑

"शराब पिएं और पिलाएं ! अशिक्षा को दूर भगाएं !!"

मेरे एक भाई साहब हैं। एक सरकारी विद्यालय में अध्यापक हैं। नैनीताल में ही एक ग्रामीण क्षेत्र में कार्यरत हैं। कहने लगे कि क्या जमाना आ गया है, मेरा एक 'कुलीग' मुरादाबाद से शराब के पाउच स्मगल करके लाता है और विद्यालय की आड़ में ग्रामीणों को शराब सप्लाई करता है। वैसे भी पहाड़ में शराब और शिक्षा दो महत्वपूर्ण समस्याएं रही हैं। शराब बन्दी को लेकर आन्दोलन तक होते रहते हैं। भाई साहब ने कहा कि अगर एक शिक्षक ही अवैध शराब का कारोबार करेगा तो फिर वह बच्चों को शिक्षा क्या देगा ?

बात मार्के की है। लेकिन उन्हें शायद यह नहीं पता कि शिक्षा और शराब का कितना जीवंत रिश्ता है। इसे पंजाब की राज्य सरकार ने बखूबी पहचाना है। शराब की सर्वाधिक खपत वाले राज्य पंजाब ने शराब से शिक्षा देने का अचूक नुस्खा ढूंढ निकाला है और उस पर वह अमल भी कर रही है। आप जितना शराब पीयोगे, बच्चे उतनी अच्छी तालीम पायेंगे। आप कहोगे कि क्या बेवकूफी की बातें हैं ?

भाई मेरे, आप इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर रहे हो, क्या कुछ संभव नहीं है ! बस पहल लेने की जरूरत है ! पंजाब सरकार ने एक पहल ली है। अब सभी राज्य सरकारों को, यहां तक कि केन्द्र सरकार को भी इससे सीख लेनी चाहिए !

हुआ यह है कि पंजाब की राज्य सरकार के एक निर्णय के तहत पंजाब में बिकने वाली शराब की प्रत्येक बोतल पर पांच रुपये शिक्षा अधिभार लगाया गया है। इससे प्राप्त धनराशि राज्य में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति सुधारने पर खर्च होगी। वैसे भी, पंजाब सरकार का यह कोई नया करिश्मा नहीं है। यहां पहले शराब की एक बोतल पर एक रुपये शिक्षा अधिभार लिया जाता था। लेकिन यह आमदनी पर्याप्त न होने के कारण इसे अब पांच रुपये कर दिया गया।

अब अगर भाई साहब पंजाब में होते तो अपने सहयोगी शिक्षक के कार्यों के आलोचक नहीं, प्रशंसक ही होते ! पंजाब सरकार ने उन तमाम आलोचकों की बात का माकूल जवाब दे दिया जो कहते हैं कि शराब से घर-परिवार बर्बाद हो जाते हैं। बच्चों की पढ़ाई-लिखाई सब बर्बाद हो जाती है। वैसे शराबी तो तर्कों की खाक परवाह भी नहीं करते। पर सरकार को तो तर्क भी चाहिए और पैसा भी ! हरियाणा व आंध्र में शराबबन्दी के बाद राजस्व घट गया प्रदेश में आर्थिक संकट आ गया। पर पंजाब सरकार 'टेंशन फ्री' हो गयी क्योंकि उसके पास 'रामबाण' तर्क मौजूद है कि अगर लोग शराब नहीं पियेंगे तो बच्चे पढ़ेंगे कैसे ?

दरअसल बात यह है कि हमारे देश में सरकारें "अच्छे" प्रयोगों की ओर ध्यान ही नहीं देतीं। अब अगर उत्तर प्रदेश सरकार भी यही योजना लागू कर ले तो हो जाए पांचों अंगुली घी में। बल्कि हम तो यह कहते है कि हमारी सरकार को इस आविष्कार को और आगे बढ़ाना चाहिए। उसे शिक्षा को शराब कम्पनियों द्वारा प्रायोजित करवाना चाहिए। पाठ्य पुस्तकों और स्कूल ड्रेसों तक में शराब कम्पनी के प्रतीक चिह्न लगाने चाहिए। बल्कि कुछ शराब की बोतलें व रेट लिस्ट भी छात्रों में प्रचार के लिए बांटी जानी चाहिए। जिनमें यह लिखा हो कि "शराब पियें और पिलाएं अशिक्षा को दूर भगाएं" या फिर "पियो और पढ़ाओ, भारत को साक्षर बनाओ" आदि-आदि।

हो सकता है कि कोई आलोचक महोदय कहें कि इससे बच्चों में भी दारू पीने की लत पड़ सकती है। कौन समझाये इन आलोचकों को, कि इससे भी होगा तो लाभ ही। बच्चे अपने पढ़ने का कुछ खर्चा खुद भी उठायेंगे। उनमें स्वावलम्बन की भावना जागृत होगी।

● चारुचन्द्र

... बोलते आंकड़े ...
... चीखती सच्चाइयां ...

☞ विश्व स्तर पर आधा पेट खाने की मजबूरी के साथ सोने वालों की आधी संख्या एशिया में रहती है।

☞ खाद्य एवं कृषि संगठन के ताजा आंकड़ों के अनुसार विश्व के दो तिहाई युवा उन देशों में रह रहे है जहां प्रति व्यक्ति सालाना आय 50 हजार रुपये से भी कम है। जबकि 12 प्रतिशत युवा ही शानो-शौकत वाले अमीर देशों में जी रहे हैं।

☞ इस समय देश में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के 10 हजार मैनेजर ऐसे हैं जिनकी वार्षिक आय 50 लाख रुपये से भी ज्यादा है, जबकि 60 प्रतिशत आबादी ऐसी है जिन्हें पांच हजार रुपये वार्षिक आय से भी कम में गुजारा करना पड़ता है। याने एक अनुपाते एक हजार का अन्तर है। उदारीकरण की नीतियों के लागू होने के बाद से देश में अमीरी-गरीबी की खाई बेइन्तहां बढ़ने का यह एक उदाहरण मात्र है।

☞ एक परमाणु बम बनाने में होने वाले 4 करोड़ रुपये खर्च से गरीब आबादी के लिए 3300 मकान बनाये जा सकते थें, एक अग्नि मिसाइल की निर्माण लागत 60 करोड़ रुपये से 15 हजार ग्रामीण स्वास्थ्य केन्द्रों का सालाना खर्च चल सकता है।

☞ वर्ष 1999-2000 का केन्द्रीय वार्षिक रक्षा बजट 45 हजार करोड़ रुपये है। रक्षा मंत्रालय के नियमित प्रशासनिक और पेंशन खर्चों को जोड़कर यह 55 हजार करोड़ रुपये होगा। अगर मौजूदा रक्षा बजट, जो सकल घरेलू उत्पाद का 2-3 प्रतिशत है और जो कारगिल युद्ध के बाद बढ़कर 3-5 प्रतिशत तक (अनुमानित) पहुंच गया, तो कुल वास्तविक रक्षा बजट होगा 70-75 हजार करोड़ रुपये, जो सरकार के कुल सालाना व्यय के 25 प्रतिशत से भी ज्यादा होगा।

उड़ीसा में प्रशिक्षित बेरोजगार शिक्षकों का आत्मदाह :

खुद को खत्म करने की जगह अमानवीय व्यवस्था को ही खत्म करना होगा !

जिस वक्त धनपतियों के 'मिलेनियम' के उन्मादोत्सव की तैयारियां अपने शबाब पर थीं, उड़ीसा प्रान्त के छह शिक्षकों ने आत्मदाह की कोशिश की, जिनमें से एक प्रसन्न कुमार मोहंती अब जीवित नहीं है। उसने कटक मेडिकल कालेज में दम तोड़ दिया।

लम्बे समय से नौकरी पाने के लिए संघर्षरत उड़ीसा के इन शिक्षकों को उस वक्त निराशा हाथ लगी जब राज्य सरकार ने प्रशिक्षित बेरोजगार शिक्षकों की भर्ती की विज्ञप्ति तो निकाली, लेकिन आवेदन के लिए 40 वर्ष की अधिकतम आयु सीमा निर्धारित कर दी थी और वे ये सीमा पार कर चुके थे। उनकी मांग महज दो वर्ष आयु में छूट की थी।

इस घटना के कुछ दिनों पूर्व ही जयपुर के एक युवा टैक्सी ड्राइवर रामचंद्र मंगतानी ने पुलिस उत्पीड़न से तंग आकर अपनी पत्नी के साथ आत्महत्या कर लिया था। वह पुलिस के अमानवीय बर्ताव के बारे में साठ पृष्ठों का ब्यौरा छोड़ गया है; जो पुलिसिया जुल्म की, जिन्दा तस्वीर है।

पुलिसिया उत्पीड़न का एक और शिकार नौजवान, 25 वर्षीय मंजीत सिंह सोढ़ी ने 10 जनवरी को लखनऊ विधान सभा के समक्ष दिन के वक्त आत्मदाह की कोशिश की। बाद में अस्पताल में उसने भी दम तोड़ दिया। इसी दिन पटना में मुख्यमंत्री आवास के सामने अपने ऊपर हुए जुल्म के प्रतिरोध और न्याय मिलने की नाउम्मीदी में गनौरा देवी ने भी आत्मदाह की कोशिश की।

सहस्त्राब्दि के शोर-शराबे की बीच आत्मदाह की ये घटनाएं हमारे वर्तमान तंत्र के क्रूर और संवेदनशून्य चेहरे का एक जीता-जागता नमूना है। कितना भयावह है यह सब कुछ। प्रशिक्षित होने के बावजूद नौकरी की नाउम्मीदी में या पुलिस की बर्बरता का शिकार होकर खुद की जिन्दगी को समाप्त कर लेने का प्रयास। यह है उदारीकरण का सच। यह है 'रोजगार विहीन विकास' का एक छोटा सा नमूना। यह है भाजपा के 'भयमुक्त समाज' की हकीकत। ये घटनाएं अपवाद नहीं हैं। यह तो, समुद्र में तैरते विशाल हिमशिलाखण्ड का ऊपर दीखने वाला महज छोटा सा हिस्सा है।

दरअसल, भूमण्डलीकरण के वर्तमान दौर में, नौकरी पाना तो महज एक सपना है। उदारीकरण-निजीकरण के वर्तमान दौर में छंटनी और तालाबन्दी की जो प्रक्रिया चल रही है उसमें नौकरीशुदा लोगों की ही नौकरी खतरे में है, तो नयी नियुक्तियां भला कैसे संभव है ? नौकरी के लिए तरह-तरह की बाधाएं खड़ी होंगी ही। 25 करोड़ बेरोजगारों की फौज में लगातार और तेज गति से वृद्धि जारी है। अब तो सरकार ने इससे साफतौर पर पल्ला झाड़ लिया है। 'या तो देश का ''विकास'' कर लो या फिर रोजगार लो !' देश की अर्थव्यवस्था कों विश्वअर्थव्यवस्था में मिलाने के लिए कुर्बानियां तो देनी ही पड़ेंगीं! और दस फीसदी धनपशुओं के वैभव के लिए यह कुर्बानी 90 फीसदी लोगों से ही तो ली जाएगी। प्रधानमंत्री के ''कठोर फैसले'' इन्हीं के सुख के लिए हैं। बाकी के लिए है लाठी-डण्डा-जेल-पुलिस-थाना और मरने की राह।

लेकिन अपनी जिन्दगी यूं ही खत्म कर देना ही समस्या का समाधान तो नहीं। आत्मदाह की आग में खुद को झोंक देने से बेहतर क्या यह न होगा कि इस आदमखोर हत्यारी व्यवस्था के ही खात्मे की तेयारी की जाए ! अगर आग लगानी ही है तो विलासिता और समृद्धि के उन टापुओं पर लगायी जाय, जो हमारे शरीर के एक-एक कतरा खून को निचोड़कर हमें मरने के लिए छोड़ दे रहे हैं।

कात्यायनी के शब्दों में :

यह समय है
या राख और अंधेरे की बरसात ?
बेहतर है
आग लगे
जंगलों की ओर
मुड़ जाना !

● रामबाबू

तुम प्यार करो ऐसे
जैसे किसी ने किसी को कभी नहीं किया
तुम घृणा करो ऐसे
जैसे किसी ने किसी पर कभी नहीं किया
हंसो तो ऐसे हंसो
कि हर तरफ खिल उठें
सत्य और सौन्दर्य के फूल
रोओ तो ऐसे रोओ
कि आंसुओं से झिलमिला उठे जाग्रत
मनुष्य का विषाद
तुम बढ़ो
सागर के ज्वार की तरह बढ़ो
और दफन कर जाओ
तमाम जुल्मो-सितम
सात समुद्र पार बियाबान में ...

● महेश्वर

निजीकरण के खिलाफ उ०प्र० बिजली कर्मियों का संघर्ष

यह जीत तात्कालिक है, खतरा बरकरार है !

उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत परिषद का विघटन कर तीन निगमों में तब्दील कर देने के निर्णय के खिलाफ विद्युत अभियन्ताओं और कर्मचारियों की ग्यारह दिन तक चली शानदार हड़ताल के आगे अन्ततः सरकार को झुकना पड़ा। हड़ताली नेताओं और सरकार के प्रतिनिधियों के बीच हुए समझौते में सरकार को निजीकरण का निर्णय अगले एक वर्ष तक टाल देना पड़ा है। हड़ताली नेताओं-कर्मचारियों पर थोपे गये रासुका, एस्मा आदि सभी कानूनों को वापस लेने, सभी बर्खास्त कर्मचारियों-अभियन्ताओं को वापस काम पर रखने एवं किसी भी प्रकार की दण्डात्मक कार्रवाई न करने का आश्वासन देने के बाद ही हड़ताल वापस ली गयी।

उत्तर प्रदेश के बिजली कर्मियों की यह तात्कालिक जीत इस बात का प्रमाण है कि यदि किसी संघर्ष को अस्तित्व का सवाल बनाकर लड़ा जाये, जुझारू एकजुटता बरकरार रहे तो दमन-उत्पीड़न के हर प्रहार को झेलते हुए भी अन्ततः कामयाबी हासिल की जा सकती है। इस जीत का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है कि उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों के खिलाफ पूरे देश के भीतर चलीं अधिकांश लड़ाइयों को दुःखद पराजय का मुंह ही देखना पड़ा है। यह जीत आगे के लिए एक मिसाल बन सकती है, यदि इसकी उपलब्धियों को बचाये रखा जाता है।

दरअसल, बिजली कार्मियों ने अपनी लड़ाई पूर्व की लड़ाइयों की तुलना में ज्यादा हठी ढंग से इसलिए लड़ी क्योंकि देश में विगत एक दशक के निजीकरण-उदारीकरण के अनुभवों ने उन्हें काफी कुछ सिखा दिया था। एक तो यह कि निजीकरण के नतीजे अब खुलकर सामने आ चुके हैं और दूसरे यह कि आधू-अधूरे मन से लड़ी गयी लड़ाइयों का हश्र भी वे देख चुके थे। इसलिए, ज्यादा अडिग ढंग से उन्होंने एकजुटता दिखायी और इसीलिए जीतने का संकल्प लेकर लड़ रहे थे।

15 जनवरी 2000 से शुरू हुई अनिश्चितकालीन हड़ताल को कुचलने के लिए सरकार ने हरमुमकिन हथकण्डे अख्तियार किये। हड़ताल पर जाने से रोकने के लिए सरकार ने कर्मचारियों को यह झूठा आश्वासन दिया कि नये बने निगमों में उनकी सेवा शर्तों एवं अन्य सुविधाओं में कोई कटौती और छंटनी नहीं की जायेगी। लेकिन विद्युतकर्मी हरियाणा, आन्ध्रप्रदेश और उड़ीसा के अनुभव देख चुके थे, जहां कर्मचारियों की छंटनी कर दी गयी और सेवाशर्तें कड़ी बना दी गयी थीं। इसलिए, वे सरकारी झांसे में नहीं आये। जब सरकार हड़ताल रोकने में नाकाम रही तो फिर उसने हमलावर तेवर अख्तियार किया। प्रदेश के हेंकड़ीबाज ऊर्जा मंत्री नरेश अग्रवाल ने रासुका (राष्ट्रीय सुरक्षा कानून) और आवश्यक वस्तु सेवा अधिनियम (एस्मा) लगा कर गिरफ्तार करने और नौकरी से बर्खास्त करने की धमकी देनी शुरु की और बाद में अमल भी किया। सैकड़ों नेताओं और हजारों कर्मचारियों को गिरफ्तार किया गया। दर्जनों पर रासुका एवं एस्मा ठोंक दिया गया। दर्जनों अभियन्ताओं एवं हजारों कर्मचारियों को बर्खास्त किया गया एवं नयी भर्तियां शुरू कर बेरोजगार अप्रैण्टिसों के सपनों के साथ खिलवाड़ करना शुरू किया गया। इसके साथ ही, सरकार ने आम जनता को बरगलाने के लिए अखबारों में बड़े-बड़े विज्ञापनों के जरिये हड़ताल को राष्ट्रद्रोह घोषित कर और फर्जी आंकड़ों को छापकर, नित नये-नये झूठ गढ़कर गोएबल्स (हिटलर का प्रचार मंत्री, जो कहता था कि बार-बार प्रचार करके झूठ को भी सच में तब्दील किया जा सकता है) के प्रचार को भी पीछे छोड़ दिया। इन विज्ञापनों में और प्रदेश के मंत्रियों के बयानों में राज्य विद्युत परिषद के तथाकथित घाटे के लिए कर्मचारियों के निकम्मेपन व भ्रष्टाचार को दोषी ठहराया जाता था। हड़ताली नेताओं ने सरकारी प्रचार को भी चुनौती दी और इस मुद्दे पर आमने-सामने बहस के लिए ललकारा।

सरकार ने हड़ताल तोड़ने के लिए पुलिस को छुट्टा सांड़ों की तरह आतंक फैलाने के लिए अनौपचारिक [illegible] हरी झण्डी दे दी थी। नतीजा यह हुआ कि गिरफ्तारी के नाम पर पुलिस ने आधी रात को हड़ताली नेताओं के घरों पर दस्तक देना शुरू की और उनकी पत्नियों-बेटियों को बेइज्जत किया, बच्चों को आतंकित किया। लेकिन अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे कर्मचारियों के परिवारों की स्त्रियों ने भी सड़कों पर मोर्चा सम्हाल लिया।

केन्द्र सरकार ने भी राज्य सरकार को हड़ताल कुचलने के लिए पूरा समर्थन और सहयोग दिया। केन्द्रीय ऊर्जा मंत्री कुमारमंगलम लखनऊ दौरे पर आये और सरकार की पीठ थपथपाने के बाद दिल्ली लौटकर बयान दिया कि पालिसी (नीति) के सवाल पर कोई समझौता नहीं हो सकता। इसी तर्ज पर नरेश अग्रवाल भी मगरूरियत से बयान देते रहे कि परिषद के विघटन के निर्णय के अतिरिक्त वे किसी भी चीज पर वार्ता करने को तैयार हैं।

लेकिन, जैसे-जैसे दमन बढ़ता गया, आन्दोलन और भी जोर पकड़ता गया। उत्तरी ग्रिड के अभियन्ताओं और छह राज्यों के बिजली कार्मियों ने भी समर्थन में एक दिन की सांकेतिक हड़ताल की और दमन जारी रहने पर अनिश्चितकालीन हड़ताल पर जाने की धमकी दी। अन्ततः बात बिगड़ती देखकर कई चक्र की वार्ताओं के बार सरकार को झुकना पड़ा और बिजली कर्मी अपने संघर्ष में कामयाब हो गये।

लेकिन, बिजली कार्मियों की यह जीत स्थायी नहीं है। खतरा अभी सिर्फ साल भर तक टला है। इस अवधि को उन्हें अपनी एकता को मजबूत बनाने और भावी संघर्ष की तैयारी के रूप में लेना होगा, क्योंकि किसी भी प्रकार की ढिलाई महंगी पड़ सकती है।

इस आन्दोलन का सबसे महत्वपूर्ण सबक यह है कि यदि आम कर्मचारी एक जुट हों, संकल्पबद्ध हों और चौकस हों तो अवसरवादी नेतृत्व को भी साथ खींचा जा सकता है। लेकिन, साथ ही, नए जुझारू नेतृत्व को भी साहस के साथ आगे आने की जरूरत है।

• विजय शंकर तिवारी

मेक्सिको के विद्रोही छात्रों को सलाम !
साथियो! तुम्हारा रास्ता ही हमारा रास्ता है।

शिक्षा और रोजगार के अधिकार से वंचित किये जा रहे गरीबों-मजलूमों के नौजवान बेटे-बेटियों के सामने

एक ही रास्ता--मेक्सिको के छात्रों-नौजवानों का रास्ता

• राकेश कुमार

गुजरी हुई शताब्दी के अन्तिम वर्ष में अनेक ऐसी घटनाएं घटीं, जो पूंजीवादी मीडिया के लिए कोई खास आकर्षण का केन्द्र नहीं बनीं। उन्हें प्रिण्ट मीडिया ने खास तवज्जो नहीं दिया और न ही टी.वी. कैमरे की नजर उनपर टिकी। लेकिन ये घटनाएं ऐसी थीं, जो इस बात का संकेत दे गयी हैं कि इक्कीसवीं सदी के गर्भ में क्या-कुछ पल-बढ़ रहा है। इन घटनाओं में नयी सदी में उठने वाली भीषण सामाजिक उथल-पुथल की कौंध थी। 'इतिहास के अन्त' की घोषणाएं करने वालों की दुनिया के सामने वे प्रति-उद्घोषणाए थीं कि बाजार और मुनाफे की सभ्यता को उसकी माकूल जगह भेजने की लिए इतिहास ताना-बाना बुन रहा है। ऐसी ही घटनाओं में एक घटना थी— मेक्सिको के छात्रों का साम्राज्यवाद के पिठ्ठू अपने शासकों की जनविरोधी नीतियों के खिलाफ विद्रोह। मेक्सिको के छात्रों का यह विद्रोह हवा के एक तेज झोंके की तरह था, जिसने मेक्सिको की जर्जर शासन-व्यवस्था को हिलाकर रख दिया।

'यूनाम' के प्रदर्शनकारी छात्रों का जुलूस

शिक्षा के बाजारीकरण के खिलाफ तनी मुट्ठियां

लैटिन अमेरिका के उच्च शिक्षा के सबसे बड़े विश्वविद्यालय नेशनल ऑटोनॉमस यूनिवर्सिटी ऑफ मेक्सिको (National Autonomous University of Mescico), जिसे 'यूनाम' के नाम से जाना जाता है, के करीब 2 लाख 80 हजार छात्र-छात्राएं विगत 20 अप्रैल 1999 से अपनी विभिन्न मांगों के समर्थन में अनिश्चितकालीन हड़ताल पर हैं। उच्च शिक्षा में राजकीय सहायता में कटौती करने और सालाना टोकन फीस 2 सेन्ट में 7250 गुने की भयंकर बढ़ोत्तरी कर 145 डालर किये जाने तथा अन्य छात्र विरोधी नीतियों के खिलाफ मेक्सिको सिटी में 23 अप्रैल को जबर्दस्त प्रदर्शन हुआ जिसमें लगभग एक लाख छात्रों और आम लोगों ने हिस्सा लिया। इसके ठीक दो ही दिन बाद 25 अप्रैल को हड़ताली छात्रों ने यूनाम के प्रशासकीय भवन पर कब्जा कर लिया। उन्होंने यूनाम के टावर पर हड़ताल और संघर्ष के प्रतीक के रूप में लाल और काले बैनर टांग दिये तथा शिक्षा-शुल्कों में हुई बढ़ोत्तरी के खिलाफ नारे लगाये। सड़कों पर मार्च करने के दौरान उनके द्वारा पहने गये टी-शर्टों पर नारे लिखे थे **'एक ही रास्ता-हमारा रास्ता'**। मेक्सिको के ग्यारह अन्य विश्वविद्यालयों के छात्र-छात्राएं भी इस आन्दोलन के साथ एकजुट हो गये। प्रदर्शनकारी छात्र-छात्राओं ने मेक्सिको की आम जनता से 29 अप्रैल को निःशुल्क शिक्षा अधिकारों के बचाव दिवस के रूप में मनाने का आह्वान किया।

भूमण्डलीकरण की समूची नीतियों के खिलाफ थी यह आवाज

छात्रों का यह संघर्ष सिर्फ निःशुल्क शिक्षा के लिए नहीं बल्कि शिक्षा के निजीकरण बाजारीकरण के साथ ही मेक्सिको सरकार की दुष्परिणामी नयी आर्थिक नीतियों के खिलाफ है। मेक्सिको के आन्दोलनरत छात्रों की हड़ताल का सम्बन्ध इससे भी है कि देश की आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था का चरित्र क्या हो ? छात्रों की हड़ताली समिति के घोषणापत्र 'द रोड टू विक्ट्री' में दर्ज छः सूत्री मांगों में मुख्य मांगें हैं- तथाकथिक शैक्षिक ''सुधारों'' को खत्म करके, 1910 में सम्पन्न हुई क्रांति द्वारा अर्जित मुफ्त शिक्षा के अधिकार को प्रदान कर उसे संविधान में सूचीबद्ध किया जाए। 51 वर्षों से विश्वविद्यालय में शिक्षा शुल्क नहीं लगता था, लेकिन इस समय '' 65 डालर प्रति सेमेस्टर लगता है। आम जनता

के ऊपर लदा यह एक भारी खर्च है, जबकि देश में न्यूनतम मजदूरी प्रतिदिन 4 डालर है, देश में प्रति पांच बच्चों में चार बच्चे कुपोषण के शिकार है और अधिकांश नौजवानों सामने शिक्षा पाने की कोई उम्मीद नहीं है। एक मांग यह है कि यूनाम की प्रवेश परीक्षा बाहरी फर्मों से न करायी जाए। इसके साथ ही, हड़ताली छात्रों ने अपने घोषणापत्र में बिजली उद्योग के निजीकरण के प्रस्ताव को वापस लेने की भी मांग की है, उन्होंने बिजली कर्मचारियों से भी हड़ताल में शामिल होने की अपील की।

यूनाम के छात्रों के इस संघर्ष से बौखलाकर मेक्सिको के शासक वर्ग ने छात्रों पर अतिवादी और दुराग्रही होने का आरोप लगाया। जिसके जवाब में संघर्षरत छात्रों ने कहा कि, **''हम मेहनतकशों के बेटे-बेटियों को वे दुराग्रही कह रहें हैं,क्योंकि हम हर एक के अधिकर की रक्षा के लिए लड़ रहे हैं। यदि ऐसा करना दुराग्रह है, तो ठीक है, हम दुराग्रही हैं।''**

मेक्सिकों के शासक वर्ग ने अभी तो शिक्षा के निजीकरण करने की शुरुआत भर की है। मगर शिक्षा, स्वास्थ्य के साथ ही आधारभूत उद्योगों-बिजली, सड़क आदि का निजीकरण तेज गति से हो रहा है। साम्राज्यवाद के साये में आई.एम.एफ. व विश्व बैंक की शर्तों को लागू कर भूमण्डलीकरण की नीतियों के तहत निजीकरण-उदारीकरण किया जा रहा है, जिससे कुछ सीमित हाथों में पूंजी का संकेन्द्रण और बाकी भारी आबादी का कंगालीकरण हो रहा है। मेक्सिको की लगभग 90 प्रतिशत आबादी का जीवन स्तर गिरता जा रहा है, महंगाई-बेरोजगारी तेजी से बढ़ रही है पूरा का पूरा मेक्सिकन समाज भयंकर उथल-पुथल का शिकार है। जगह-जगह विरोध, प्रदर्शन हो रहे हैं। किसान, मजूदर, कर्मचारी सभी मेहनतकश वर्ग अपने हकों की लड़ाई के लिए सड़कों पर उतर रहे हैं। यूनाम के छात्रों का वर्तमान आन्दोलन तथा अन्य मेहनतकश वर्गों से उसको मिल रहा सहयोग-समर्थन, मेक्सिको में गहराते आर्थिक संकट के खिलाफ आम आबादी के बढ़ते असंतोष और उससे मुक्ति की छटपटाहट

अपने हक-हूकूक के लिए
ईरान के छात्रों ने भी आवाज बुलन्द की

जहां जुल्म है, वहां इन्साफ की लड़ाई भी है। इस हकीकत को ईरान के बगावती छात्रों ने पिछले साल जुलाई में हुए जबर्दस्त आन्दोलन में चरितार्थ कर दिया। विद्रोही छात्रों ने बेरोजगार नौजवानों और आम लोगों के साथ सड़कों पर विरोध प्रदर्शन कर पुलिस तथा सरकार से लड़ाई लड़ी। छात्रों का यह विद्रोह इस्लामिक रिपब्लिक ऑफ ईरान के शासक वर्गों की नीतियों के खिलाफ संघर्ष के रूप में सामने आया।

8 जुलाई 1999 को शुरू होकर छह दिनों तक चला छात्रों का यह आन्दोलन तेहरान विश्वविद्यालय से शहर की सड़कों पर और फिर देश के अन्य भागों में भी फैल गया। बगावती छात्र 'सलाम' अखबार की बन्दी और प्रेस की सेंसरशिप के खिलाफ-विशेष रूप से आक्रोश में थे। लेकिन उनकी बगावत उनके दिलों में सुलगते गुस्से और ईरान के आम अवाम के असंतोष को जाहिर करती है। भयंकर गरीबी और बेरोजगारी से ईरान के सिर्फ सबसे गरीब तबके ही नहीं, बल्कि मध यवर्ग भी परेशान हाल है। कठमुल्ला शासकों और उनके धार्मिक कानूनों के दमनकारी शासन से, भारी आबादी कुपोषण और भुखमरी की शिकार है। इस्लामिक रिपब्लिक ऑफ ईरान की नारी विरोधी विचारधारा और मध्युगीन पितृसत्तात्मकता के खिलाफ महिलाएं भी बगावत कर रही हैं।

8 जुलाई को तेहरान विश्वविद्यालय के लगभग 200 छात्रों ने अपनी मांगों के समर्थन में शांतिपूर्वक प्रदर्शन किया। अधिकारियों ने उनकी मांगों के सम्बन्ध में कोई प्रतिक्रिया नहीं की, बल्कि उल्टे 9 जुलाई की सुबह दंगारोधी पुलिस (दंगाई पुलिस) ने प्रदर्शनकारी छात्रों के ऊपर बर्बरतापूर्वक हमला कर कुछ छात्रों की हत्या कर दी तथा बहुतों को गिरफ्तार कर लिया। इस बर्बर हमले ने कैम्पस के सारे छात्रों को सड़कों पर उतरने के लिए उत्तेजित कर दिया। इससे घबराकर ईरान के उच्चाधिकारियों ने सुरक्षात्मक रुख अख्तियार कर लिया। राष्ट्रपति खतामी और ईरान के 'सुप्रीम लीडर' अयातुल्ला खमेनी ने घड़ियाली आंसू बहाते हुए छात्रों के आन्दोलन को समर्थन देने की घोषणा और पुलिस द्वारा छात्रों पर बर्बरतापूर्वक हमला करने की भर्त्सना की। लेकिन ईरान के बगावती छात्र शासकों की घड़ियाली आंसुओं के पीछे छिपी असलियत को समझ चुके थे, वे इन बातों के भुलावे में नहीं आये।

12 जुलाई को तेहरान विश्वविद्यालय में प्रदर्शनकारी छात्रों की पुलिस से झड़पें हुईं और शहर में अन्य जगहों पर भी। ईरान के अन्य मुख्य शहरों में आन्दोलन के फैल जाने से इसमें महत्वपूर्ण इजाफा हुआ। तेहरान के छात्रों से प्रेरणा लेकर, 11 जुलाई को तबरिज के छात्र भी अन्य लोगों के साथ सड़कों पर उतर पड़े। अब, ईरान के शासक पैंतरा बदलकर छात्रों के आन्दोलन के समर्थन देने के अपने बयान से मुकर गये और छात्रों को ''डाकू'' तथा ''विध्वंसकारी'' बताते हुए उन्हें देश की ''राष्ट्रीय सुरक्षा'' के लिए खतरा बताने लगे। उच्चाधिकारियों ने लोगों को 'और प्रदर्शन न करने' की चेतावनी दी। पाबंदी को चुनौती देते हुए भारी संख्या में छात्र तेहरान विश्वविद्यालय के सामने इकठ्ठा हुए – और आम लोगों ने उनका साथ दिया। दोपहर में दंगाई पुलिस ने उन पर हमला कर दिया। बहुत से छात्र जख्मी हुए और गिरफ्तार कर लिये गये। लेकिन

(अगले पृष्ठ पर जारी)

देश के अन्य हिस्सों में भी यह विद्रोह फैल गया।

क्रुद्ध ईरानी छात्र गृह मंत्रालय का गेट तोड़कर भीतर घुसते हुए

बीस साल पहले, अमेरिकी साम्राज्यवाद के कठपुतली शाह के खिलाफ ईरान की जनता ने बगावत की थी और उस महान संघर्ष का फायदा उठाकर प्रतिक्रियावादी ताकतें सत्तासीन हो गयी थीं। हाल के विद्रोह वर्षों से ईरानी जनता के दिलों में जज्ब अपने हक-हूकूक हासिल करने की चाहत को बताते हैं जिसके लिए उन्होंने अपनी आवाज बुलन्द की है।

ईरान के मेहनतकशों की इंकलाबी पार्टी सरबेदरान (यूनियन ऑफ कम्युनिस्ट्स ऑफ ईरान) ने छात्रों के इस आन्दोलन के बारे में कहा कि 'छह दिनों में आम जनता ने राजनीतिक पाठ सीख लिया है।' इस आन्दोलन की एक मुख्य कमी यह रही कि छात्रों ने कोई मुख्य नारा नहीं दिया और महिलाओं के उत्पीड़न के खिलाफ आवाज नहीं उठायी। छात्राओं ने इस आन्दोलन में बड़ी तादाद में हिस्सा नहीं लिया, जबकि विश्वविद्यालय में उनकी तादाद करीब 40 प्रतिशत है।

ईरान के छात्रों के इस आन्दोलन में अन्दरूनी संघर्ष भी चलते रहे। संघर्ष इस बात पर था कि आन्दोलन को कैम्पस में ही चलाकर राष्ट्रपति खतामी से कुछ सुधारों की मांग की जाए या समूची शासन-व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष किया जाए। यह एक महत्वपूर्ण बिन्दु था, क्योंकि ईरान के छात्र आन्दोलन के इतिहास में आन्दोलन को कैम्पस में सीमित रखने और व्यापक आम अवाम से जोड़कर समूची शासन-व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष चलाने का बिन्दु हमेशा से समझौतावादी धारा और क्रांतिकारी धारा का विभाजन बिन्दु रहा है। ...और हमेशा की तरह इस आन्दोलन में भी ईरान की बहुसंख्यक छात्र आबादी ने इस सही और जुझारू क्रांतिकारी रास्ते का ही साथ दिया।

को बताता है।

मेक्सिको के छात्र आन्दोलन ने गुजरी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में, 1910 में, हुई मेक्सिको की क्रांति की यादें ताजा कर दी हैं, जब मेक्सिकन जनता ने अपने जनवादी अधिकारों को हासिल करने के लिए राजनीतिक-सामाजिक क्रांति की थी। आज जब राष्ट्रपति जेडिलो के नेतृत्व में मेक्सिको का शासक वर्ग नयी आर्थिक नीतियों के द्वारा आम जनता के रहे-सहे जनवादी अधिकारों व राजकीय सहायता को छीनने की कोशिश कर रहा है, तो मेक्सिको की मेहनतकश आम जनता के साथ ही अब आम छात्रों ने भी सशक्त विरोध कर 1910 की क्रांति के नये संस्करण की तैयारी शुरू कर दी है। सरकार की नयी आर्थिक नीतियों से तबाह व असंतुष्ट आम आबादी सही समाधान की तलाश में पुरानी मान्यताओं को तोड़ रही है— बिजली उद्योग के निजीकरण के खिलाफ सैकड़ों बिजली कर्मचारियों द्वारा सड़कों पर किया गया मार्च, पहाड़ों में चल रही गुरिल्ला कार्रवाइयां, चियापास प्रान्त में किसानों द्वारा हो रहा सशस्त्र संघर्ष — इन सबके बीच नयी युवा पीढ़ी अपने अधिकारों के संघर्ष के लिए राजनीतिक परिदृश्य पर अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है। शासक वर्ग उनके दृढ़ निश्चय से भयभीत है कि उनका संघर्ष समाज के अन्य क्षेत्रों में भी फैल सकता है। हड़तालीं छात्र दो बसों में भरकर चियापास में संघर्षरत लोगों को समर्थन देने के लिए भी गये थे। मेक्सिको की सरकार और उनके साम्राज्यवादी आका ज्वालामुखी के मुहाने पर बैठे हुए हैं और विद्रोही आबादी से भयभीत हैं। जैसे-जैसे इस वर्ष के आगामी चुनाव नजदीक आ रहे है, वैसे-वैसे आम जनता के दिमाग में एक ही बात आ रही है कि **''अपना दमन करवाने के लिए हम किस पार्टी को चुनें ?''**

मेक्सिको के छात्रों के इस आन्दोलन को महाद्वीप के अन्य भागों से भी समर्थन मिल रहा है। अमेरिका के एक क्रान्तिकारी संगठन 'लिब्रोस रिवोल्यूशन' ने इस आन्दोलन के समर्थन में लास एंजिल्स में पर्चा भी बांटा। जिसमें इस आन्दोलन का समर्थन करने, साम्राज्यवाद तथा उसके पिठ्ठुओं का विरोध करने, बैनर-समर्थन संदेश-पत्र आदि भेजने की अपील की गयी है।

दमन भी जारी है और प्रतिरोध भी

आन्दोलन को दबाने-कुचलने के प्रयास भी कम नहीं किये गये। 21 मई 1999 को हड़तालीं छात्रों से अपनी मांगों के समर्थन में सड़कों पर एक बार फिर मार्च किया। अगस्त 1999 में प्रदर्शन के दौरान छात्रों की पुलिस से झड़प भी हो गयी। मेक्सिको सिटी के मेयर कार्डीनास ने पुलिस द्वारा छात्रों के पीटे जाने और गिरफ्तार करने को उचित ठहराया तथा यह कहा कि ''जब जरूरत होगी पुलिस हस्तक्षेप करेगी।'' हड़तालीं छात्रों ने मेक्सिको के राष्ट्रपति जेडिलो, मेक्सिको सिटी के मेयर कार्डीनास, विश्वविद्यालय के अध्यक्ष (रेक्टर)

बार्नीस और पुलिस चीफ के खिलाफ नारे भी लगाये। यूनाम के संघर्षरत छात्रों के दमन-उत्पीड़न के खिलाफ हाल ही में हुए प्रदर्शन बैनर व पोस्टर इस सच्चाई को बता रहे थे-- ''कार्डीनासः दमनकारी''। विश्वविद्यालय के अध्यक्ष बार्नीस ने हड़ताल खत्म करवाने के लिए संघीय सरकार से हस्तक्षेप करने की अपील की है तथा राष्ट्रपति जेडिलो ने धमकी के अन्दाज में कहा कि ''समाधान के लिए सरकार **कोई अन्य** उपाय करेगी।'' जो, हड़ताल के प्रति शासन-प्रशासन की मंशा को बताता है।

तात्कालिक रूप से इस आन्दोलन का अंजाम चाहे जो हो, लेकिन इतना तय है कि सरकार यदि इस आन्दोलन को कुचलने का प्रयास करेगी तो उसे इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ेगी। क्योंकि 2 अक्टूबर 1968 को मेक्सिको सिटी में हुए छात्रों के आन्दोलन में प्रशासन द्वारा किये गये जनसंहार की स्मृतियां लोगों के दिलों में अभी ताजा हैं और मेक्सिको के संघर्षशील नौजवानों का हौसला पस्त नहीं हुआ है बल्कि उनके पूर्वजों की शहादतें उनको संघर्ष के लिए प्रेरित कर रही है और इस बात को प्रामणित कर रही हैं कि विद्रोह को कुचला जा सकता है लेकिन विचारों को नहीं ।

एफ अर्से से खदबदा रहा था आक्रोश

ऐसा नहीं है कि यूनाम के छात्रों का आन्दोलन अचानक उठ खड़ा हुआ है। उसके पीछे कुछ निश्चित कारण रहे हैं, जो मेक्सिको की अर्थव्यवस्था के संकट की घनीभूत अभिव्यक्ति हैं। इन संकटों की शुरुआत उस समय हुई जब 1982 में मेक्सिको की सरकार ने आइ.एम.एफ. से नये कर्ज लेने के लिए मेक्सिको की मुद्रा पीसो के भारी अवमूल्यन और ''मुक्त'' व्यापार करने की शर्तों को मानकर पूरी अर्थव्यवस्था पर से नियंत्रण हटा लिया। 1984 से 1994 तक दस वर्षों में मेक्सिको की प्रति व्यक्ति आय 16 प्रतिशत और वास्तविक मजदूरी 40 प्रतिशत कम हो गयी। अमीरी-गरीबी की खाई तेजी से बढ़ी, मुट्ठी भर 10 प्रतिशत अमीर आबादी की आय में 22.3 प्रतिशत की वृद्धि हुई, जबकि 10 प्रतिशत सबसे गरीब आबादी की आय में 22.3 प्रतिशत की कमी हो गयी। 1994 में पीसो का भारी अवमूल्यन हुआ और 1 जनवरी 1994 को मेक्सिको की सरकार द्वारा उत्तरी अमेरिका मुक्त व्यापार संधि (NAFTA) में शामिल होने के बाद अर्थव्यवस्था पर बचे-खुचे सरकारी नियंत्रण को समाप्त कर शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा के मद में भारी कटौती की गयी। बाजार अमेरिकी मालों से भर गये, देशी उद्योग तबाह होने लगे, बेरोजगारी तेजी से बढ़ने लगी, मजदूरों अधिकारों को एक-एक करके छीना जाने लगा। अर्थव्यवस्था के संकटग्रस्त होने के साथ ही पूंजीवादी जनतंत्र का क्रूर चेहरा भी बेनकाब हो गया और जनान्दोलनों को कुचलने-दबाने की शुरुआत हुई।

मेक्सिको के आइने में दिखती हमारे देश की तस्वीर

मेक्सिको में यूनाम के छात्रों का आन्दोलन उन सामाजिक समस्याओं के विरुद्ध व्याप्त असंतोष को बताता है जो अब खुले तौर सामने आ गया है। जिसके हिरावल आम छात्र-नौजवान हैं, जो समाज के अन्य मेहनतकश वर्गों के आन्दोलन के साथ अपने आन्दोलन को जोड़ रहे हैं। यूनाम के छात्रों के आन्दोलन में स्वतःस्फूर्तता का पहलू बेहद कम बल्कि सचेतनता का पहलू ज्यादा है। छात्र-मजदूर एकता का नारों और व्यावहारिक कार्रवाइयों में प्रतिबिम्बन यह दर्शाता है कि मेक्सिको के छात्र-युवा आन्दोलन की विचारधारात्मक दिशा स्पष्ट है। आन्दोलन की दिशा यह बताती है कि पूरे देश के पैमाने पर एक क्रान्तिकारी पार्टी के गठन और उसके नेतृत्व में विभिन्न संघर्षरत तबकों की एकजुट लड़ाई की मंजिल बहुत दूर नहीं। ऐसा लगता है कि साम्राज्यवाद को आखिरी जोरदार धक्का लैटिन अमेरिका की जमीन से मिलेगा क्योंकि मेक्सिको भूमण्डलीकरण की सबसे बुरी मार झेलने वाले देशों में से एक है और जहां दमन है वहां प्रतिरोध भी है। चे-ग्वेवारा की विद्रोही आत्मा आज भी लैटिन अमेरिकी युवाओं की आत्माओं को आलोड़ित कर रही हैं।

हमारे देश के छात्र-नौजवान अभी मेक्सिको के अपने भाइयों से काफी पीछे हैं, जबकि उन्हीं नीतियों का कहर यहां भी जारी है जिनके खिलाफ मेक्सिको के छात्रों ने बगावत की है। लेकिन देर-सबेर यह होना ही है क्योंकि अपने देश में नयी आर्थिक नीतियों के दूसरे आक्रामक दौर में भाजपा सरकार ने शिक्षा का बाजारीकरण कर उसे पूरी तरह अमीरों की बपौती बना देने की गति को तेज कर दिया है। बेरोजगारी बढ़ रही है और उनसे उत्पन्न अवश्यम्भावी छात्र-युवा असंतोष से निपटने के लिए शासन-व्यवस्था अपना दमनतंत्र चाक-चौबन्द कर रही है।

अपने देश के नौजवानों को धैर्यवान और सर्वसहा होने के मिथक को एक झटके से तोड़कर आगे आना होगा। यह इतिहास का पैगाम है, जिसे मेक्सिको के विद्रोही छात्रों ने सुन लिया है - हम कब सुनेंगे? क्या मेक्सिको के आईने में हम अपने देश का भविष्य नहीं देख रहे हैं? नयी सदी में इसका जवाब देश के छात्रयुवा अवश्य देंगे। सवाल सिर्फ यह हो सकता है कि कब और कितनी देर बाद। जितनी जल्दी यह आवाज सुनी जाएगी, उतनी जल्दी हम उन सपनों की दुनिया बनाने की ओर बढ़ेंगे - जो पिछली शताब्दी में भगतसिंह और उनके साथियों ने संजोए थे। ●

क्रान्तिकारी नौजवान की कसौटी

''कोई नौजवान क्रान्तिकारी है अथवा नहीं, यह जानने की कसौटी क्या है ? ... इसकी कसौटी केवल एक है, यानी यह देखना चाहिए कि वह व्यापक मजदूर-किसान जन-समुदाय के साथ घुलमिल कर एक हो जाना चाहता है अथवा नहीं ? क्रान्तिकारी वह है जो मजदूरों और किसानों के साथ घुलमिलकर एक हो जाता हो, वरना वह क्रान्तिकारी नहीं है या प्रतिक्रान्तिकारी है।''

● *माओ त्से-तुङ.*

स्त्रियों की 8 मार्च कमेटी की ओर से जारी

ईरान में स्त्री दमन का विरोध करो

(प्रस्तुत लेख ईरानी स्त्रियों की 8 मार्च कमेटी द्वारा ईरानी राष्ट्रपति खटामी की यूरोपीय देशों की यात्रा के विरुद्ध जारी किए गये वक्तव्य का सम्पादित अंश है। यह वक्तव्य 8 मार्च 1999 को जारी हुआ था। सम्पादक)

ईरान का इस्लामी गणतंत्र एक फासीवादी, जनविरोधी, स्त्रियों से नफरत करने वाली व निर्दयी शासन व्यवस्था है और दुनिया की तमाम जनता को इसका विरोध करना चाहिए। यूरोपीय शक्तियां खटामी को अपने यहाँ इसलिए बुला रही हैं क्योंकि ईरान के इस्लामी गणतंत्र के समर्थन में उनका निहित स्वार्थ है। अपनी स्थापना के समय से ही मौजूदा सरकार ने पश्चिम की विश्व पूंजीवादी ताकतों को ईरान में अपनी प्रत्यक्ष और प्रच्छन्न कार्रवाइयों के जरिये हर साल करोड़ों डालर का मुनाफा लूटने की उदारतापूर्वक इजाजत दी है। और अब तेल के एक ऐसे धनी देश के मुखिया के रूप में, जिसकी जनता गरीबी में आकंठ डूबी हुई है. खटामी यूरोपीय तेल कम्पनियों के साथ पेट्रोल की आखिरी बूंद तक का सौदा पटाने और बदले में यूरोपीय देशों से अपने फासीवादी शासन के लिए राजनीतिक समर्थन हासिल करने के उद्देश्य से इन देशों का दौरा कर रहे हैं। वे वहां इसलिए जा रहे हैं कि इन पूंजीपतियों से, मिट्टी के मोल ईरानी श्रम के शोषण का अवसर मुहैया कराने का वायदा कर सकें। वे वहां खरीददारी करने भी आ रहे हैं– हथियारों की खरीददारी करने निगरानी रखने वाले व जनसंख्या नियंत्रण के सर्वाधिक उन्नत उपकरण की खरीददारी करने आ रहे है ताकि ईरानी जनता को और भी कुशलता के साथ दबाया– कुचला जा सके। इरानी इस्लामी गणतंत्र के ये डायनासोर राजनीतिक दमन के मध्यकालीन तरीकों के साथ-साथ पश्चिमी पूंजीवादी देशों द्वारा ईजाद किये और गढ़े गये सर्वाधिक उन्नत तरीकों के इस्तेमाल में बहुत दक्ष हैं। ईरानी सरकार से मेल मिलाप करके इन पूंजीवादी देशों के शासक वर्ग का आर्थिक व राजनीतिक हित तो सधता ही है। परन्तु उन्नत देशों के बुनियादी मेहनतकशों, बेरोजगारों, आप्रवासियों, युवाओं और महिलाओं के ऐसे किसी भी हित की पूर्ति इससे नहीं होती। उनका हित अपने देश के शासक वर्ग का विरोध करने और इस्लामी गणराज्य के खिलाफ संघर्षरत ईरानी जनता के साथ अन्तरराष्ट्रीयतावादी एकजुटता कायम करने में निहित है।

राष्ट्रपति खटामी की यात्रा का विरोध इसलिए होना चाहिए क्योंकि वह एक ऐसी शासन प्रणाली का मुखिया है जिसने अपनी जनता के प्रति सबसे भयानक किस्म के अपराध किये हैं। बीस साल पहले ईरान की जनता अपने अत्यन्त बुनियादी अधिकारों, मुक्ति और स्वतंत्रता के संघर्ष के लिए उठ खड़ी हुई थी। उसने शाह के भ्रष्ट और दमनकारी शासन को उखाड़ फेंका था। शाह सरकार के पतन के बाद परिणामस्वरूप, जनता के बीच से सभी सामाजिक स्तरों और वर्गों के लोग अपने आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक मूल अधिकारों के संघर्ष को जारी रखने और भेदभाव, अन्याय और गरीबी से मुक्ति पाने के लिए संगठित होने लगे। फैक्टरियों में विभिन्न प्रकार की कामगार सभाएं, गांवों में किसानों के यूनियन और सभायें, स्त्री संगठन, लेखक संघ और छात्र यूनियन, चिकत्सालय और स्कूल काउंसिल हर जगह पैदा हो रहे थे। ईरान में दबी-कुचली राष्ट्रीयताओं — जैसे कुर्द और तुर्क मूल के लोगों ने समान अधिकारों के लिए संघर्ष छेड़ दिया था। परन्तु शाह शासन के खिलाफ हमारे लोगों के संघर्ष का फायदा उठाया अयातुल्लाह खुमैनी और उसके गुट ने, और ईरान के इस्लामी गणतंत्र का गठन इन लोगों ने किया। धार्मिक न्यायाधिकरण के सदस्यों का यह गिरोह स्वयं को जनपक्षधर और मुक्ति योद्धा के रूप में प्रस्तुत करने में सफल रहा तथा पश्चिमी ताकतों की रजामन्दी से, जनता के पीठ पर सवार होकर सत्ता के केन्द्र में जा पहुँचा। ईरान के इन नये इस्लामी शासकों ने शाह की उस सिक्रेट पुलिस और फौज को तत्काल पुनर्गठित किया जिससे जनता इतनी नफरत करती थी और उस पर टूट पड़े। विशेषकर ऐसे लोगों पर, जो उन्हीं आदर्शों के लिए लड़ रहे थे, जिसकी खातिर ईरानी जनता ने शाह शासन से टक्कर ली थी। इस्लामी गणतंत्र के बीस वर्ष गरीबी से बदहाल जनता के अत्यन्त मूलभूत अधिकारों का योजनाबद्ध और बर्बर दमन का काल रहा है– इसमें विरोध की हर आवाज को कुचल दिया गया, दसियों हजार राजनीतिक विरोधियों को गिरफ्तार किया गया, उन्हें प्रताड़ित किया और मौत के घाट उतार दिया गया, स्त्रियों पर मध्य युगीन पुरुषसत्तात्मक व्यवस्था लाद दी गयी।

स्त्रियों के सम्बन्ध में इस्लामी गणतंत्र का रिकार्ड

शाह की जगह शासन की बागडोर सम्हाले हुए अभी एक माह भी नहीं बीता था कि अयातुल्लाह खुमैनी ने स्त्रियों को हमले का निशाना बना कर अपने मजहबी निरंकुश शासन की शुरुआत की। उसने औरतों के लिए पर्दा अनिवार्य कर दिया। उसके बाद उनके निजी जीवन व सामाजिक सम्बन्धों को धर्मोपदेशों और धार्मिक मूल्यों से संचालित किया जाने लगा और इसने संवैधानिक कानून का दर्जा अख्तियार कर लिया। अपने अस्तित्व में आने के बाद से ही ईरानी इस्लामी गणतंत्र ने समूचे समाज पर अपनी पकड़ को मजबूत बनाने के लिए औरतों के खिलाफ राजनीतिक व विचारधारात्मक युद्ध छेड़ रखा है। उसने परम्परागत भूमिकाओं व रूढ़िवादी नैतिकता का शिकंजा उनके गर्दन पर कस दिया है और उन पर पुरुष आधिपत्य को गहरे और व्यापक रूप

से पैना कर दिया गया है। वे इसके लिए कड़े कदम उठा रहे हैं और बर्बर तरीकों का इस्तेमाल कर रहे हैं। परन्तु औरतें भी इस जोर जबर्दस्ती का लगातार विरोध करती रही हैं।

आर्थिक व सामाजिक रूप से स्त्रियों को लगभग दास जैसी स्थिति में रखा गया है। कानूनी नियम के मुताबिक स्त्रियां अपने पति की आधिकारिक इजाजत के बगैर विदेश यात्रा पर नहीं जा सकतीं वे इस कदर सामाजिक बन्धनों के अधीन हैं कि बिना पुरुष के साथ के वे एक शहर से दूसरे शहर में भी आ-जा नहीं सकतीं। पुरुषों को कानून से कुछ मिनटों में ही अपनी पत्नियों से एकतरफा तलाक लेने का हक हासिल है, वे चार पत्नियां और अपनी इच्छानुसार जितनी रखैलें चाहें रख सकते हैं, जबकि तलाकशुदा स्त्री को अपना बच्चा अपने पास रखने का हक नहीं है; 9 साल की उम्र में भी बच्चियों का निकाह पिता की रजामन्दी से किया जा सकता है। ईरान के इस्लामी गणतंत्र का कानून यह कहता है कि यदि लड़कियों का विवाह 9 साल से कम उम्र में हुआ है तो पति उसके साथ बलात्कार नहीं कर सकता लेकिन उंगलियों से उसका कौमार्य भंग करने की उसे इजाजत है। यदि कोई विवाहित स्त्री किसी पुरुष के साथ परस्पर सहमति से दैहिक सम्बन्ध कायम करती है तो कानूनन पत्थर मार-मार कर उसकी जान ली जा सकती है उथवा उसके पुरुष सम्बंधियों को कानूनी हक है कि परिवार की 'इज्जत' बचाने के लिए वे उसे जान से मार डालें। यह कानून है उस देश का, श्रीमान खटामी जिसके रखवाले हैं और जिसे अक्षरशः लागू करने का दम्भ भरते हैं।

स्त्रियों को अपने अंगूठे तले रखने के उद्देश्य से इस्लामी गणतंत्र के सरकारी अधिकारियों ने सार्वजनिक रूप से उनके आचार-व्यवहार पर निगरानी रखने के लिए कानूनों का पालन करवाने वाले नाना प्रकार के पुलिस बलों को गठित किया है– लैंगिक व्यवहार पर निगरानी रखने वाली पुलिस, पहनावे पर निगरानी रखने वाली पुलिस इत्यादि।

बन्दीगृह और महिला राजनीतिक बन्दी

इस्लामी गणतंत्र के जघन्यतम अपराधों में से एक दस वर्ष पूर्व किया गया था, जब सात दिनों के भीतर सैकड़ों-हजारों राजनीतिक कैदियों को मौत के घाट उतार दिया गया था। इसमें एक बड़ा हिस्सा औरतों का था। वे इस्लामी शासन के खिलाफ अपने विरोध की आवाज बुलन्द कर रही थीं और उन्हें कत्ल कर दिया गया। अपने सिद्धान्तों पर हमेशा मजबूती से डटे रहने की उनकी परम्परा ईरान की पुरुज्जीवित स्त्री आन्दोलन के लिए अमूल्य है। इनमें से गिरफ्तार अधिकांश स्त्रियां किशोर वय की थीं। ये स्त्रियां और बहुतेरी अन्य, जो इस्लामी गणतंत्र की काल कोठरी से बच निकली थीं, औरतों की परम्परागत भूमिका के विरुद्ध बगावत का झण्डा बुलन्द कर रही हैं, उन्होंने आर्थिक अभाव और सामाजिक अन्याय, जिसे हमारी बहुसंख्यक जनता पर लाद दिया गया है, को चुनौती दी है, रूढ़िवादी और सड़े-गले विचारों के खिलाफ वे संघर्ष में कूद पड़ी हैं। स्त्रियों से घृणा करने वाले इस्लामी गणतंत्र के ख़िलाफ उन्होंने राजनीतिक जंग छेड़ने की हिम्मत दिखाई। वे फैक्टरियों में लड़ रही थीं, विश्वविद्यालयों और विद्यालयों में लड़ रही थीं, सांस्कृतिक क्षेत्र में लड़ रही थीं, कुर्दिस्तान में संघर्षरत थीं और अन्त में, कारावास में लड़ रही थीं।

और बदले में जेल अधिकारी उनपर दुगुनी बर्बरता से टूट रहे थे। एक तो इसलिए कि उन्होंने राज्य के खिलाफ बगावत करने की जुर्रत की थी और इसलिए भी कि औरत होकर भी उन्होंने ऐसा करने की हिम्मत की। उन्हें तोड़ने और उनका आत्म सम्मान कुचल डालने के उद्देश्य से जेल अधिकारियों द्वारा उन्हें भीषण यातनायें दी गईं, उनसे बलात्कार किया गया, रजोधर्म के दौरान साफ-सफाई की सुविधाओं से उन्हें वंचित किया गया, ब्लेड से उनके स्तनों को चीर दिया गया आदि, आदि। इस्लामी कानून के अनुसार कुमारियों को मौत की सजा नहीं दी जा सकती इसलिए हाईस्कूल की कम उम्र छात्राओं के साथ ये आतताई उन्हें मौत के घाट उतारने के पहले बलात्कार करते थे।

जिस समय इन वीभत्स अपराधों को अंजाम दिया जा रहा था, श्रीमान राष्ट्रपति खटामी इस शासन व्यवस्था के एक मंत्री थें–इस्लामी संस्कृति और संदर्शक मंत्री ! ...

आप किसकी ओर हैं

पश्चिमी यूरोपीय शक्तियां, मानवाधिकार हनन के खिलाफ अपने अनेकानेक अन्तरराष्ट्रीय और यूरोपीय कानूनों की डींग हांकते हैं। परन्तु इन पूंजीपतियों के हाथ में इससे भी बड़ा एक कानून है – मुनाफा, और मुनाफा कमाने का कानून। इस कानून के अन्तर्गत ये ताकतें एशिया के विभिन्न क्षेत्रों में, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका में ईरान के इस्लामी गणतंत्र जैसे जनविरोधी और स्त्री से नफरत करने वाले शासन से प्रेम जताते हैं, उसे ताकतवर बनाते हैं और उसकी रक्षा करते हैं।

हम इन तमाम देशों की जनता तक अपनी आवाज पहुँचाना चाहते हैं – विशेष कर उन लोगों तक जो खुद भी अपने-अपने देशों में अनेकानेक प्रकार के सामाजिक उत्पीड़न और शोषण के खिलाफ जंग लड़ रहे हैं – इस सघर्ष में हमारे साथ एकजुट हो जाइये। हम विशेष रूप से जर्मनी, फ्रांस, इटली और अन्य यूरोपीय देशों की औरतों का आह्वान करते हैं कि ईरान की महिलाओं के सघर्षों के साथ एकजुटता का प्रदर्शन कीजिये। राष्ट्रपति खटामी की इटली, फ्रांस, जर्मनी की यात्राओं का पूरी ताकत के साथ विरोध कीजिए और आयोजित किये जाने वाले विरोध मार्च और अन्य कार्रवाईयों में भागीदारी कीजिए।

ईरान में स्त्रियां इस्लामी गणतंत्र की समस्त पाशविकता के खिलाफ जंग कर रही हैं। आइये कटखने कुत्तों के इस पृथ्वी ग्रह पर हम स्त्रियों की दासी और अर्द्धदासी जैसी हैसियत के खिलाफ एकजुट हो जायें और एक ऐसे विश्व के लिए संघर्ष करें जहां दूसरों की कीमत पर जिन्दा रहने की कोशिश कोई भी नहीं करता।

'रिवोल्यूशनरी वर्कर' से साभार.

अनुवाद : मीनाक्षी

एक संघर्ष की शताब्दी पर

मानव इतिहास संघर्षों का इतिहास है। इतिहास में कई बार ऐसे कठिन दौर आते हैं जब समाज के स्वाभाविक विकास की धारा निहित स्वार्थों द्वारा अवरुद्ध हो जाती है। तब किसी जलधारा के ठहराव से उत्पन्न सड़न के समान, समाज भी ठहराव से सड़ने लगता है। इन सड़न भरे दौरों में राजनैतिक-सामाजिक-शैक्षणिक संस्थाओं के नियन्ता अपनी सत्ता का इस्तेमाल केवल -अपने भौतिक-मानसिक सुखों के विस्तार और चमचों-चाटुकारों की फौज खड़ी करने में लगाते हैं। वैसे भी ऐसे दौर में ये आत्म केन्द्रित क्षुद्र जीव यथास्थिति को निरन्तरता प्रदान करने से ज्यादा कुछ सार्थक कर भी नहीं सकते हैं। ऐसे कठिन समय ही उदात्त भावनाओं, स्पष्ट दृष्टि और सर्वस्व त्याग से ओत-प्रोत महानायकों और उनके दुर्द्धर्ष समर्थकों का सृजन करते हैं जो न केवल जमाने को समझते हैं बल्कि उसे बदलने के संघर्ष को उसकी तार्किक परिणति तक पहुँचाने के ऐतिहासिक कार्यभार को बखूबी अंजाम देते हैं।

आज से एक शताब्दी पहले एक ऐसे ही संघर्ष का सूत्रपात छोटा नागपुर के पठारों तथा खासकर रांची, सिंहभूम, चक्रधरपुर आदि मुंडा बहुल क्षेत्रों में प्रारम्भ हुआ था। हालांकि वह संघर्ष तत्कालीन शक्तिशाली सत्ताधारी उपकरणों तथा यथास्थितिवादी शक्तियों जैसे सामन्तों और व्यापारियों के संगठित प्रयासों से दबा दिया गया किन्तु उस आन्दोलन की ऊष्मा ने दबे-कुचले मुण्डाओं को स्वाभिमान और मानवीय गरिमा से भर दिया था।

सारी दुनिया में मेहनतकशों की आम आबादी को तो उपेक्षित रखा ही गया है मूलनिवासियों और जन-जातियों को भी इतिहास का वाहक नहीं माना गया है। ऐसे तमाम लोग आम तौर पर इतिहास का विषय नहीं समझे जाते। ऐसे लोगों की बात होती भी है तो बस उस कन्धे की तरह जिन पर शासक सवार थे—सवार को दिखाने के लिए सवारी को दिखाना अनिवार्य होता है। पर स्पार्टकस के कलात्मक पुनर्जन्म ने और बिरसा मुंडा जैसे अनेक जननायकों ने सिद्ध कर दिया है कि उन्हें इतिहास के सलीब पर नहीं चढ़ाया जा सकता। इन जन-जातियों, आदिवासियों और तमाम मेहनतकश आबादी का इतिहास श्रम और संघर्ष का अदम्य इतिहास है।

आज उलगुलान आन्दोलन की शतवार्षिकी पर हम बिरसा मुंडा और उनके समकालीन समाज पर एक टिप्पणी प्रस्तुत कर रहे हैं।

● संपादक

बिरसा मुण्डा – संघर्ष और समय

प्लासी की पराजय के साथ ही भारत में स्थानीय राजे-रजवाड़ों और नवाबों का अवसान प्रारम्भ हो चुका था। लार्ड कार्नवालिस के स्थायी भूमि-प्रबन्ध ने जमींदारों का एक ऐसा वर्ग पैदा कर दिया था जो अस्तित्व के लिए ही अंग्रेजी शासन का मुहताज था। अतः जमीन्दार परम्परागत सामंतों की अपेक्षा अपने असामियों के प्रति अधिक निष्ठुर तथा अपने क्षुद्र स्वार्थों के प्रति ज्यादा सचेत थे। किन्तु इसी प्रबन्ध ने किसानों की हैसियत भूस्वामी से गिराकर मात्र बटाईदार की कर दी थी।

कालान्तर में यह अंग्रेजी शासन फैल कर उन दुर्गम हिस्सों में भी पहुँच गया जहाँ के निवासी इस प्रकार की सभ्यता-संस्कृति और परम्परा से नितान्त अपरिचित थे। आदिवासियों के बीच ब्रिटिश शासकों ने उनके सरदारों को जमीन्दार घोषित कर उनके ऊपर मालगुजारी जमा करने का बोझ लाद दिया। इसके अलावा समूचे आदिवासी क्षेत्र में महाजनों, व्यापारियों और लगान वसूलने वालों का एक ऐसा वर्ग घुसा दिया गया जो अपने चरित्र से ही ब्रिटिश दलाल था।

ये बिचौलिए जिन्हें मुंडा दिकू (सम्भवतः डाकू) कहते थे, ब्रिटिश तन्त्र के सहयोग से मुंडा आदिवासियों की सामूहिक खेती को तहस-नहस करने लगे और तेजी से उनकी जमीनें हड़पने लगे थे। वे तमाम कानूनी-गैर कानूनी शिकंजों में मुंडाओं को उलझाते हुए, उनके भोलेपन का लाभ उठाकर उन्हें गुलामों जैसे स्थिति में पहुँचाने में सफल रहे थे। हालांकि मुंडा सरदार इस स्थिति के विरुद्ध लगातार 30 वर्षों तक संघर्ष करते रहे किन्तु बिरसा मुंडा ने इस संघर्ष को नई ऊंचाई प्रदान की।

बिरसा मुंडा का जन्म एक बटाईदार परिवार में 1874 में हुआ था। वह अपने जीवन के शुरुआती दौर में मिशनरी में जाकर ईसाई भी हो चुका था। उस समय आमतौर पर मुण्डा लोग संकट काल में साहबी सहायता पाने के लोभ में ईसाई हो जाते पर अपने रीति-रिवाज जारी रखते थे। किन्तु बिरसा का ईसाई बनने का लक्ष्य उस समय किसी भी मुण्डा के लिए बहुमूल्य और दुर्लभ शिक्षा अर्जित करना था।

सरदारों के संघर्ष की प्रभावहीनता तथा मुंडा लोगों के गिरे हुए जीवन स्तर से खिन्न बिरसा सदैव ही उनके उत्थान और गरिमापूर्ण जीवन के लिए चिन्तित रहा करता था। 1895 में बिरसा मुंडा ने घोषित कर दिया कि '' वह धरती का ईश्वर है, उसे भगवान ने धरती पर भेजा है ताकि वह अत्याचारियों को मार कर मुंडाओं को उनके जंगल-जमीन वापस कराए तथा एक बार छोटा नागपुर के सभी परगनों पर मुंडा राज कायम करे।'' बिरसा मुंडा के इस आह्वान पर समूचे इलाके के आदिवासी उसके दर्शनों को आने लगे। इसी क्रम में वह समूचे आदिवासी गांवों में घूम-घूम कर धार्मिक-राजनैतिक प्रवचन देते हुए मुण्डाओं का राजनैतिक-सैनिक संगठन खड़ा करने में सफल हुआ। बिरसा मुण्डा ने ब्रिटिश नौकरशाही की प्रवृत्ति और औचक्क आक्रमण की दृष्टि से 24 दिसम्बर 1899 का दिन अपने आन्दोलन की शुरुआत के लिए तय किया था।

24 दिसम्बर 1899 को छोटा नागपुर का 550 वर्ग मील क्षेत्र उलगुलान की आग से दहक उठा। आन्दोलन की भीषणता इतनी अधिक थी कि उलगुलान के चौथे ही दिन रांची के डिप्टी कमिश्नर ने सीधे सेना बुलाना ही श्रेयस्कर समझा। यही नहीं तमाम ब्रिटिश

दलाल समुदाय मुण्डा बहुल इलाके से दुम दबा कर भागने लगा था।

7 जनवरी 1900 को बिरसा ने खूंटी थाने पर हमला किया। उस हमले में एक सिपाही मारा गया। अब तक मुण्डाओं के सीने में हौल बनकर घुसा हुआ पुलिसिया आतंक हवा हो गया था। किन्तु यह नितान्त दो भिन्न प्रकार के समाजों के बीच ही संघर्ष नहीं था, यह दो प्रौद्योगिकियों के बीच भी संघर्ष था। बन्दूकों के समक्ष मुण्डाओं के गुलती बलोया न टिक सके और 10 जनवरी के दिन सैलराकार की निर्णायक मुठभेड़ में हजारों मुण्डा शहीद हो गए। इस निर्णायक संघर्ष के बाद भी बिरसा संघर्ष की आग सीने में दबाए बच निकला था। बिरसा की गिरफ्तारी के लिए 500 रुपए का इनाम रखा गया। यही नहीं, मुण्डा लोग उस पुरस्कार के लिए मुहताज हों इसके लिए उन्हें भूखों मारने के प्रबन्ध भी किए गए। इसी प्रबन्ध का प्रतिफल था कि बिरसा मुण्डा फरवरी 1900 में गिरफ्तार हुआ और जेल में ही 9 जून 1900 को रहस्यमयी परिस्थितियों में मर गया।

बिरसा मुण्डा ने मुण्डाओं को संगठित करने में तमाम अवैज्ञानिक आधारों- ईश्वरीयता, धर्म आदि का आश्रय लिया था। यही नहीं संघर्ष के दौरान वस्तुगत तथ्य—सैनिक क्षमता की उपेक्षा कर छापामार संघर्ष के बजाय सीधे संघर्ष में शामिल हुआ। बिरसा की इन गलतियों से समूचे आन्दोलन को नुकसान उठाना पड़ा किन्तु क्या बिरसा इन गलतियों से बच सकते थे ?

टोना एक काल्पनिक प्रौद्योगिकी है (डी.पी. चट्टोपाध्याय)। अतः उस दौर में जब सूचना और संचार के साधन एक दम नहीं थे तथा समाज की उत्पादन प्रणाली आदिम थी - सांस्कृतिक पिछड़ेपन के कारण आन्दोलन के गठन और प्रसार के लिए ईश्वरीयता से बचा नहीं जा सकता था। पर समग्रता में बिरसा ने अपनी समूची प्रतिभा मुंडा समाज के उत्थान के लिए ही लगाई थी।

• मुक्तिबोध मंच, पन्तनगर

धर्म का धंधा-ईसा मसीह का नया चेहरा

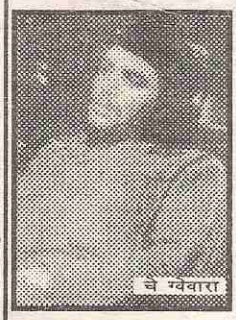

यूं तो ईश्वर और धर्म की सत्ता के अस्तित्व को लेकर तमाम सवाल उठते रहे हैं, विवाद खड़े होते रहे हैं और बहसें होती रहीं हैं। हम उन विवादों के इतिहास में जाना भी नहीं चाहते। इस बहस का अवसान तो पिछली शताब्दी की शुरुआत में ही हो गया था। वैसे सामाजिक और वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरूप धर्मकेन्द्रित समाज के स्थान पर मानवकेन्द्रित समाज की स्थापना के साथ ही इन बहसों-विवादों का भविष्य निर्धारित हो गया था। लेकिन, इधर, धर्म के प्रतीकों का संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण कर उनका नवीनीकरण करने की जरूरत महसूस होने लगी है। इसका एक उदाहरण पिछले वर्ष इसाई कलीसों के एक समूह द्वारा ईसा मसीह का चेहरा बदलने की चाहत व्यक्त करना है।

2000 वर्षों के बाद 'चर्चेज इन एडवरटाइजिंग नेटवर्क' (CAN) के विज्ञापनकर्ताओं ने यह प्रस्तावित किया है कि ईसा मसीह का दयनीय, करूण और बासी चेहरा बदल कर उन्हें एक उग्रपरिवर्तनवादी की छवि दी जाए; जिसके चेहरे पर ओज तथा आंखों में चमक हो। इसीलिए ईसा मसीह का प्रस्तावित नया चेहरा लैटिन अमेरिका के प्रसिद्ध कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी चे-ग्वेरा से मेल खाता हुआ है, न कि किसी आस्थावान इसाई का। चेहरा बदलने के पीछे फादर टॉम एम्ब्रोस की तर्क है कि ईसा मसीह के चेहरे से एक समर्पण का भाव झलकता है इसके विपरीत उन्हें एक क्रान्तिकारी की तरह दिखना चाहिए। यह सर्वविदित है कि चे-ग्ववोरा अपने जीवन में धर्म के कायल नहीं रहे। उन्होंने एक ही धर्मयुद्ध लड़ा-शोषित, उत्पीड़ित मानवता के लिए। लैटिन अमेरिका की आम जनता की मुक्ति ही उनका धर्म था।

अर्जेण्टीना में जन्मे चे-ग्वेवारा, एक डाक्टर थे। वे पूरे लैटिन अमेरिका को अपनी मातृभूमि मानते थे और किसी भी देश में क्रान्ति की मदद करने को हमेशा तत्पर रहते थे। वे क्यूबा के तानाशाह बतिस्ताकी सरकार के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष में फिडेल कास्त्रों के नेतृत्व वाले छापामार दस्ते के सदस्य थे। 1 जनवरी 1959 को क्यूबा की क्रान्ति की विजय के बाद उन्हें क्यूबा के राष्ट्रीय बैंक का डायरेक्टर, फिर उद्योग मंत्री बनाया गया। लेकिन इस विद्रोही आत्मा को सरकार चलाना रास नहीं आया और वे क्यूबा छोड़कर बोलीविया की क्रांति में भाग लेने के लिए चल पड़े। 1967 में छापामार दस्ते का नेतृत्व करते हुए चे-ग्वेवारा बोलीविया के जंगलों में अमेरिकी साम्राज्यवादपरस्त प्रतिक्रियावादी शासकों के हाथों शहीद हो गये।

यदि, आज 'चर्चेज इन एडवारटाइजिंग नेटवर्क' अपने कामों के प्रसार के लिए चेहरे की कांतिमय आभा और भविष्य की ओर उठी निगाहों वाली चे-ग्वेवारा की छवि को ईसा मसीह के रूप में स्थापित करना चाहता है तो इसका उद्देश्य विशुद्ध रूप से व्यापारिक ही है। दरअसल ईसा मसीह की यह छवि 'ईस्टर सर्विस' मे ज्यादा लोगों को आकृष्ट कराने के लिए एक समूह 'क्रिश्चियन इन मीडिया' द्वारा प्रस्तुत की गयी हैं। ऐसा करने से तमाम लोग सहमत नहीं हैं। लेकिन इससे धर्म का व्यापारिक स्वरूप खुलकर सामने आ गया है। इस प्रकरण में, हम किसी धर्म की प्रतिमा को अपने समय में संशोधित एवं परिवर्द्धित होते देख रहे हैं। ईसा मसीह के चेहरे में दीनता का भाव देखकर उसे बदलने वाले, धर्म के व्यापारी कहीं स्वयं ही दीन-हीन असहाय-निरुपाय तो नहीं हैं ? इससे धर्म के व्यापारियों की खुद की आस्था ही जाहिर होती है— व्यापार में आस्था! ईसा मसीह की जगह चे-ग्वेवारा का चेहरा लगाने से, कहीं चेहरों का अदल-बदल करने वालों की दुनिया के अन्त की तैयारी न शुरू हो जाए? क्योंकि चेहरा एक प्रतीक होता है, उसके साथ विचार और दर्शन भी प्रचारित होते हैं और विचार कहीं भौतिक शक्ति बन गये तो क्या होगा? इसका जवाब चे-ग्वेवारा की भविष्य की ओर उठी निगाहों में ढूढ़ां जा सकता है।

• भूपेश कुमार

मिथक और भ्रमजाल-ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय

इंग्लैंड के राजा चार्ल्स प्रथम को प्राणदण्ड दिए जाने के बीस वर्ष बाद, 1669 में उसकी विधवा, हेनरीटा-मारी, के अंतिम संस्कार के अवसर पर फ्रांसीसी बिशप बोस्सुए ने शोक-व्याख्यान दिया था। यह बिशप अपनी वाग्मिता के लिए उतने ही प्रसिद्ध थे जितने कि राजशाही के अपने समर्थन के लिए। अपने इस भाषण में निकट अतीत में जो कुछ बातें हुई थीं उनके विरुद्ध चेतावनी देते हुए उन्होंने कहा था :

"हर आदमी ने अपने आप को न्यायाधिकरण के रूप में प्रतिष्ठित कर लिया जिसमें अपने विश्वासों का निर्णायक वह स्वयं था ... ऐसे लोगों के अधार्मिक विचलन को दण्डित करने के लिए ईश्वर ने उन्हें उनकी बौरा गयी अति जिज्ञासा के हवाले कर दिया। इसमें अचरज की तनिक भी बात नहीं है कि इसके बाद उनके मन से राजा और कानून के प्रति सम्मान समाप्त हो गया, न ही इसमें कोई अचरज की बात है कि उनमें बनावटीपन आ गया, वे विद्रोही और दुराग्रही हो गये। जब आप धर्म के साथ छेड़छाड़ करते हैं तब आप उसे कमजोर करते हैं और उसे उस गुरुता से वंचित कर देते हैं जिसके बल पर वह जनता को नियंत्रण में रखता है।"

आप उक्त कथन से सहमत हों या न हों, लेकिन आप उसकी उत्कृष्ट स्पष्टता से इनकार नहीं कर सकते। इसमें धर्म को किसी परिभाषा में सीमित करके तरह-तरह के वाद-विवादों में उलझाने का कोई प्रयास नहीं है। किसी चमत्कारी क्षमता या किसी रहस्यमय ज्ञान का कोई दावा नहीं है। संक्षेप में, ऐसी किसी अलौकिकता का दावा नहीं है जो "शुद्ध" धर्म का आधार बतायी जाती है, और जिसके कारण उस पर विद्वेष और हत्या का जो आरोप लगाया जाता है, खास तौर से "इन्क्विजिशन" के दिनों में, उस आरोप से वह बरी हो जाता है। बोस्सुए द्वारा किया गया धर्म का समर्थन वस्तुतः बिल्कुल साफ शब्दों में धर्म के राजनीतिक कार्य का समर्थन था। इसे जनता को नियंत्रण में रखने का एक कारगर हथियार माना गया है, परिणामतः जब इसके साथ छेड़छाड़ की जाती है - अथवा जब इसकी गुरुता को कम किया जाता है - तब लोग बेचैन, दुराग्रही और विद्रोही हो जाते हैं।

धर्म के नाम से जाने वाले इस अत्यंत गूढ़ तत्व को व्याख्यायित करने का यद्यपि यही एक मात्र तरीका नहीं है, लेकिन उसे इस दृष्टि से देखने का यह तरीका भी एक मान्य तरीका है। अन्य लोग शायद इसे "संगठित धर्म" या शायद "अनुशासित धर्म" की व्याख्या बताना पसन्द करेंगे और कहेंगे कि यह उन निजी आध्यात्मिक विश्वासों से फर्क चीज है जिनके पीछे राजनीतिक विवशताओं की घिनौनी जरूरतों का नहीं बल्कि अन्य तत्वों का बल होता है।

इस प्रकार का विभेदीकरण वैध हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता। लेकिन उससे हमें यहां गरज नहीं। हमारा मुद्दा तो बहुत सीधा-साधा है। संगठित धर्म जैसी एक चीज है, और धर्म के इसी प्रकार में समाजशास्त्रियों की रुचि हो सकती है। किसी व्यक्ति के वैयक्तिक विश्वासों में — जिस हद तक कि वे बिल्कुल निजी रहते हैं — समाजशास्त्री की कोई दिलचस्पी न है, और न हो सकती है। बेशक, मनोवैज्ञानिकों को, और कुछ अन्य लोगों को भी, इन निजी विश्वासों के बारे में शायद बहुत कुछ कहना हो।

सो इस अर्थ में जिसे हम धर्म कहते हैं — आप उसे संगठित धर्म कह लें या और कुछ—हमारा सरोकार इस चर्चा में उसी धर्म से है। हमसे पूछा गया कि मानव के विकास में धर्म सहायक है या बाधक है ?

अजीब तो लगेगा, लेकिन जिस धर्मगुरु को हमने ऊपर उद्धृत किया है उसने इस प्रश्न का उत्तर दे दिया है, हलांकि अपने तरीके से। और उत्तर है कि धर्म सहायक और बाधक, दोनों है। इसमें कोई विपर्यय नजर नहीं आयेगा। बशर्ते कि हम इसमें निहित दोनों दृष्टिकोणों को अलग-अलग करके परखने पर सहमत हों। वस्तुतः इसमें दो भिन्न दृष्टिकोण है जिनसे हम धर्म की भूमिका को परख सकते हैं। एक दृष्टिकोण के अनुसार धर्म सचमुच (मानव विकास में) बहुत सहायक है, जबकि दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार यह बहुत बड़ी बाधा है।

आइए, देखें कि ये दो दृष्टिकोण क्या हैं ?

सीधे-सादे शब्दों में, एक दृष्टिकोण है मनुष्यों पर नियंत्रण स्थापित करने का, और दूसरा है प्रकृति को नियंत्रित करने का : यानी कि जिस हद तक कि प्रकृति का हमें ज्ञान है या उसे समझा जाता है।

ऊपर जिस धर्म-गुरु की बात उद्धृत की गयी है, उसने अपनी बात बिना किसी लाग-लपेट के कहीं है। उसने बल-पूर्वक कहा कि धर्म मनुष्यों को नियंत्रण में रखने में बहुत सहायक है। लेकिन ऐसा सोचना गलत होगा कि बिशप बोस्सुए की यह बात उनकी मौलिक खोज थी। धर्म की भूमिका काफी प्राचीन काल से ही पहचानी और मानी जाती रही है। प्लेटो, आइसोक्रिटीज, पोलि-बियस और स्ट्रेबो, इन सभी ने यही बात कही है। इनमें से मैं सिर्फ एक के कथन को उद्धृत करूंगा।

आइसोक्रिटीज ईसा पूर्व चौथी शताब्दी का एक सुविज्ञ यूनानी था। उसने प्राचीन मिस्र के अश्मीकृत धर्म का अध्ययन किया और धर्म की स्पष्ट राजनीतिक भूमिका के प्रति उसके मन में सराहना पैदा हुई। उसने देखा कि मिस्र के विधिकर्ताओं को उसकी महान उपयोगिताओं का भली-भांति ज्ञान था प्रथम, "क्योंकि उसकी राय में यह उचित था कि जनता अपने से बड़ों द्वारा दिये गये प्रत्येक आदेश का पालन करने की अभ्यस्त हो जाये", और द्वितीय, "उसने देखा कि जो लोग अपनी पवित्रता का प्रदर्शन करते थे

वे अन्य सभी दृष्टियों से भी कानून का पालन करने वाले होते हैं।"

वस्तुतः संगठित धर्म जिस प्रकार की आचरण-पद्धति की अपेक्षा करता है, वह ऐसी है जो जनता को दीन अनुपालन का अभ्यस्त कर देती है। जुड़े हुए हाथ, झुका हुआ सिर, टिके हुए घुटने — दूसरे शब्दों में, सहमति और समर्पण की मुद्रा और मनः स्थिति। यह वही आचरण पद्धति है जिसकी एक स्वामी अपने क्रीत दासों से, जमींदार अपनी रियाया से, राजा अपनी प्रजा से अपेक्षा करता है।

हमने जिस धर्म-गुरु के कथन को उद्धृत किया है, वह यह देखकर उद्विग्न हो उठा था कि यूरोप में कुछ ऐसी चीजें घटित होने लगी थीं जिन्होंने धर्म को विचलित कर दिया था, और जिसके परिणामस्वरूप अन्ततः एक ऐसी घोर दुर्घटना हो गयी जो इंग्लैंड के इतिहास में अभूतपूर्व थी। इसीलिए उसने उन लोगों पर करारा प्रहार किया जो इस नयी स्थिति को लाने के लिए मूलतः जिम्मेदार थे। कौन थे ये लोग ?

दैवी इच्छा के सांसारिक व्याख्याकार की भूमिका अपनाते हुए-जैसा कि धर्म-गुरू लोग हमेशा करते हैं--बोस्सुए ने कहा कि ये वे लोग हैं जिन्हें ईश्वर ने अति जिज्ञासा के पागलपन का दण्ड प्रदान किया है। यूरोप के इतिहास पर सरसरी निगाह डालें तो हम देख सकते हैं कि वह किन लोगों का उल्लेख कर रहा था। ईश्वरीय शाप के कारण कहिए, या गहन सामाजिक रूपान्तरण का परिणाम् कहिए, लेकिन यह सच है कि यूरोप में ऐसे व्यक्ति उत्पन्न हुए जिन्होंने अपनी जिज्ञासा को पवित्रता की, अथवा धर्म ग्रंथों में उद्घाटित सत्यों की कठोर सीमा के अन्दर ही बांधे रखने से इनकार कर दिया। बोस्सुए निस्सन्देह इन्हीं लोगों का उल्लेख कर रहा था। स्पष्टतः उसका इशारा कोपर्निकस (1473-1543) और गैलीलियो (1564-1642) की ओर था जिन्होंने नक्षत्र मण्डल के प्रति अपनी अवैध जिज्ञासा से धर्म-गुरुओं की दुनिया में हलचल पैदा कर दी थी। धर्मगुरुओं से जितनी बन पड़ी, उन्होंने उनकी भर्त्सना की। कोपर्निकस के मृत्यु के बाद उसके बारे में जो बातें कहीं गयीं उनके चन्द उदाहरण प्रस्तुत हैं। लूथर ने कहा : "यह मूर्ख खगोलशास्त्र के सम्पूर्ण विज्ञान को बदलना चाहता है, लेकिन हमारा धर्म ग्रंथ हमें बताता है कि जोशुआ ने सूरज को स्थिर खड़े रहने का आदेश दिया था, धरती को नहीं।" विकाल्विन के कहा : "कोपर्निकस के प्रमाण को दिव्यात्मा के प्रमाण से ऊपर मानने का दुस्साहस कौन करेगा ?" कार्डिनल बेलर मीन, जिसने गैलीलियो के मुकद्दमे में प्रमुख भाग लिया था, कहा कि यह "मिथ्या खोज मुक्ति की समूची क्रिश्चियन योजना को ही दूषित करती है।"

लेकिन खगोलशास्त्री ही अकेले क्यों, बोस्सुए स्पष्ट ही ब्रुनो (1548-1600) सदृश दार्शनिकों की ओर भी इशारा कर रहा था जिसकी बौद्धिक जिज्ञासा ने उसे सर्वेश्वरवादिता का समर्थक बना दिया था। सत्तारूढ़ पुरोहित वर्ग इस मदत को खतरनाक़ की हद तक भौतिकवादी दृष्टिकोण मानते थे।

"उन्होंने उसे (ब्रुनो को) फील्ड आफ फ्लावर्स में सत्रह फरवरी, 1600 में आग में जला दिया। जब धधकती लपटों के बीच में से उसकी ओर सलीब बढ़ाया गया ताकि वह उसे चूम ले, तो उसने अपना मुंह फेर लिया। विज्ञान के युग का सूत्रपात हो चुका था।" ब्रुनो के बाद बेकन (1561-1625) और देकार्त्त (1596-1650) आये जिन्हें आधुनिक विज्ञान का पैगम्बर माना जाता है। उन्होंने अपनी 'पागल-जिज्ञासा' के दायरे में प्रकृति की प्रत्येक चीज को शामिल कर लिया, और वह भी एक ऐसे उद्देश्य के लिए जो उस उद्देश्य के सर्वथा विपरीत था जिसे पुरोहित वर्ग वांछनीय मानता था। जहां पुरोहित वर्ग एक ऐसी विचारधारा की असीम सम्भावनाएं देख रहे थे, जो प्रकृति की रहस्यों को जान लेने के बाद प्रकृति पर अपना असीम नियन्त्रण स्थापित कर सकती थी। देकार्त के शब्दों में "जिसके ज़रिये हम प्रकृति के स्वामी और भोक्ता हो सकते हैं।"

इस नयी विचारधारा का आधार ज्ञान है जिसके मतलब हैं जानने की जिज्ञासा, जो पुरोहित की दृष्टि में इतनी निंदनीय है। अतः हम देख सकते हैं कि बाधा कहां है। जहां विज्ञान मानता है कि प्रकृति के ऊपर आधिपत्य का रहस्य-ज्ञान मन में छिपा है, वहां धर्म ज्ञान के प्रति विद्वेष भावना के ऊपर फूलना-फलना चाहता है। एक कोशिश चीजों को उनके सही रूप में देखने की है, तो दूसरी ओर वह दृष्टिकोण है जिसकी सहायता से पुरोहित वर्ग जनता को नियंत्रण में रखने के आशा करते हैं। एक प्रसिद्ध दार्शनिक के शब्दों में, विश्वास के लिए जगह बनाने के हेतु ज्ञान से इनकार करना धर्म को जरूरी लगता है।

इसी जरूरत पर यहां विशेष रूप से ध्यान देने की जरूरत है। ज्ञान के प्रति विद्वेष एक प्रकार की आत्मरक्षा व्यवस्था है जो संगठित धर्म के अस्तित्व को कायम रखने के लिए जरूरी है। जिस तरह समुद्रफेनी (एक समुद्री जलचर) स्याही का आवरण तान कर अपना बचाव करती है उसी तरह धर्म भी अपने चारों ओर अंधकार का पर्दा तान कर ही सुरक्षित महसूस करता है।

भारत में हमारे यहां "ब्राह्मण" ग्रंथ हैं। पुरोहित वर्ग द्वारा रचित ये अद्भुत ग्रन्थ हैं। इनमें जो एक श्लोक बार-बार आता है वह है "परोक्ष प्रियाः इव ही देवाः" अथवा "परोक्ष कामाः इव हि देवा।" आधुनिक विद्वान इसका अर्थ करते हैः 'देवताओं को दुरूहता प्रिय है' अथवा 'देवताओं को रहस्यात्मकता से प्रेम है'। ब्राह्मण ग्रन्थों में इसे बचकाने शब्दजाल के जरिये विकृत रूप में पेश किया गया है, अथवा सुविदित शब्दों के जानबूझ कर मनमाने अर्थ दिये गये हैं। एक अपेक्षाकृत बाद के दार्शनिक, याज्ञवल्क्य, को शायद लगा कि पुरोहित फार्मूले को कुछ स्पष्ट करने की आवश्यकता है उसी फार्मूले को दोहराते हुए उन्होंने उस संक्षिप्त टिप्पणी जोड़ दी और कहाः 'देवताओं को गूढ़ता प्रिय है; उन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान अप्रिय है।" उनके द्वारा जोड़ी गयी संक्षिप्त टिप्पणी, जिसका अर्थ था कि देवताओं को प्रत्यक्ष अप्रिय है, बहुत कुछ कह जाती है और फ्रांसीसी पुरोहित बोस्सुए ने इसका उत्साह पूर्वक समर्थन किया होता। विज्ञान पर अथवा उसकी निहित क्षमताओं पर प्रतिबन्ध लगाने का यह नायाब तरीका था।

लेकिन हम लौटकर देखें कि यूरोप में क्या हुआ, वह यूरोप जिसने विज्ञान का जन्म होते देखा। वहां ज्ञान और अंधकार की

शक्तियों के बीच, विज्ञान और धर्म के बीच संघर्ष जारी रहा। बोस्सुए के एक सौ साल बाद दिदरो (1713-1784) हुआ। उसने संसार में विज्ञान का सूत्रपात करने वाली विचारधारा का बचाव किया। लेकिन हम उसे अभी भी पुरोहित वर्ग की विशिष्ट आत्मरक्षा प्रणाली के विरुद्ध संघर्ष करते हुए पाते हैं। उसने कहा **"सत्य का प्रकाश उन लोगों को कष्ट पहुंचाता है जो अंधेरे के अभ्यस्त हो चुके हैं। उनको ज्ञान का प्रकाश दिखाना वैसा ही है जैसे उल्लू के घोंसले में सूरज की एक किरण डालना इससे उनकी आँखों को पीड़ा पहुंचती है और वे चीं-चीं करने लगते हैं।**

विज्ञान में कुछ ऐसी बात है जो पुरोहितों को पीड़ित और आशंकित करती है। वह चीज आखिर है क्या ? पहली चीज तो यह कि विज्ञान हमें बताता है कि संसार वास्तव में क्या है: वह हमें तारों और सूरज और चांद के बारे में, उनके इतिहास के बारे में बताता है। वह हमें मनुष्य और राष्ट्रों के बारे में उनके इतिहास के बारे में बताता है। इस सबका एक व्यावहारिक पहलू भी है। विज्ञान हमसे एक परिवर्तित आचरण-आदर्श की अपेक्षा करता है। वह चाहता है कि हम अपना चुनाव बेहतर ढंग से करें। जो कुछ करें वह बेहतर ढंग से करें। लेकिन पुरोहित वर्ग का आग्रह रूढ़िबद्धता पर है। वह कहता है कि वैसा ही व्यवहार करो जैसा तुम्हारे दादा-परदादा करते थे, और यह निश्चित करो कि तुम्हारे बच्चे भी लीक से न हटने पायें। और कैसा व्यवहार करते थे हमारे पूर्वज ? वास्तविक जगत का परिचालन करने वाले नियमों से पूर्णतया अनभिज्ञ, या आंशिक रूप से ही भिज्ञ ये बेचारे जानते ही नहीं थे कि संसार को कैसे बदला जाये। उनके लिए जो कुछ करना सम्भव था — और जो वस्तुतः उनसे कहने को कहा जाता था — वह यह कि वे वास्तविकता के प्रति अपनी आत्मपरक मनोवृत्ति बदल लें—न केवल पूजा-प्रार्थना और प्रायश्चित के द्वारा, बल्कि भेंट पूजा आदि के जरिए भी। यदि देवता स्वयं भेंट-पूजा का उपयोग नहीं कर सकते थे तो कम-से-कम उनके सांसारिक प्रतिनिधि तो कर ही सकते थे।

इसके साथ ही हम समसामयिक स्थिति पर आते हैं। हम देखते है कि लोगों की विज्ञान के प्रति आशावादिता में एक प्रकार का ह्रास आ रहा है। यह आशावादिता पिछली शताब्दी तक जारी रही थी जब व्यापार-वाणिज्य का विस्तार हो रहा था, उद्योगों में उत्पादन बढ़ रहा था, और नयी-नयी वैज्ञानिक खोजों से मनुष्य के प्रकृति के ऊपर नियंत्रण का असीम सम्भावनाएं नजर आ रही थीं।

लेकिन प्रथम विश्व युद्ध, और उसके बाद उत्पन्न हुए आर्थिक संकट ने पश्चिमी जगत में इस आशावादिता को जबर्दस्त धक्का पहुंचाया। अनेक मध्यवर्गीय लेखकों की रचनाओं में निराशा दोष-दर्शिता और व्यंग्य के स्वर छाने लगे जायें कभी-कभी रहस्यवाद की सीमा तक पहुंचते थे, यहां तक कि उनमें धार्मिक पुनर्जागरण का आह्वान तक होता था।

ऐसे माहौल में विज्ञान और लोकतन्त्र का प्रश्न और भी महत्वपूर्ण हो उठता है। इसमें सन्देह नहीं कि लोकतन्त्र शब्द का बहुत दुरुपयोग किया जाता रहा है। दुनिया के लोगों द्वारा अपने समान हितों के साधन के लिए किये जाने वाले कार्यों को निष्प्रभावी बनाने की इच्छा से प्रेरित साम्राज्यवादी शक्तियाँ भी लोकतन्त्रवादी होने का ढोंग चती हैं। तथापि लोकतन्त्र इस दुरुपयोग से मुक्त रह कर भी जिन्दा है-वैज्ञानिक समाजवाद के अपने नये स्वरूप में। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विज्ञान की योजनाबद्ध प्रगति ही इसकी मांग है। इसकी सिद्धि हो जाने पर मनुष्य को विनाश के ताप-न्यूक्लीय और जैविक शस्त्रास्त्रों से भयग्रस्त होकर जीवित रहने की जरूरत नहीं होगी। इसके विपरीत, **विज्ञान की सहायता से भोजन, स्वास्थ्य और ऊर्जा की बुनियादी समस्याएं हल हो जायेंगी और मनुष्य एक बेहतर जीवन जी सकेगा, यह आशा की जा सकती है। लेकिन इसके लिए मिथकों और मिथ्याचारों की धुंध साफ करना जरूरी है। यही वह धुंध है जिसकी सहायता से एक मरती हुई सभ्यता अपने को बचाने की कोशिश कर रही है,** भले ही इस धुंध का स्वरूप उस धुंध से भिन्न है जिसकी प्रशंसा फ्रांसीसी पुरोहित बोस्सुए ने राजशाही का समर्थन करते हुए अपनी ओजस्वी वक्तृता में की थी।

संगठित धर्म जिस प्रकार के अंधकार से स्वयं को अच्छादित रखना चाहता है, वह कुछ लोगों के लिए फायदेमंद भी है। जैसा कि प्राचीन भारत के चार्वाकों ने घोषित किया था : शास्त्रों में जो कुछ कहा गया है वह कुछ ऐसे लोगों के लिए जीविकोपार्जन का साधन सिद्ध हो रहा है जो न हाथ-पैर हिलाना चाहते हैं और न बुद्धि का प्रयोग करना चाहते हैं (बुद्धि पौरुष हीना)।

चार्वाकों को कुचल दिया गया। महाभारत में एक कथा है कि किस प्रकार एक चार्वाक को पवित्र ब्राह्मणों ने आग में जला दिया था। लेकिन हम जानते हैं कि धर्मशास्त्र कहलाने वाले भारतीय विधि साहित्य में अपधर्मियों के विरुद्ध कठोर दण्डों का विधान किया गया था। इन अपधर्मियों में वे आरम्भिक तर्कशास्त्री भी शामिल थे जो शास्त्रों में बतायी गयी बातों की अपेक्षा विवेक और अनुभव-जन्य ज्ञान पर अधिक भरोसा करना चाहते थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि एक महत्वपूर्ण अर्थ में पूर्व और पश्चिम, दोनों जगह स्थिति समान थी। विज्ञान को सम्भव बनाने वाले ज्ञान का पक्ष समर्थन सुरक्षित और सुविधापूर्ण जीवन को दांव पर लगाकर ही किया जा सकता था। विचारकों के सामने दो ही विकल्प थे : मिथ्या बात कहने के लिए पुरस्कार और सत्य भाषण के लिए दण्ड। इसका एक कारण यह है कि पुरोहित वर्ग अकेला नहीं था। पुरोहितों के पीछे धर्मन्यायाधिकरणों की शक्ति थी, और धर्म न्यायाधिकरणों के पीछे उस राजनीतिक सत्ता का बल था जो विशाल मानव समूहों को कृषि दास और दास बनाकर रखना चाहती थी।

अतः यह कोई संयोग मात्र नहीं है कि ऐतिहासिक दृष्टि से आधुनिक विज्ञान के लिए संघर्ष, और आधुनिक लोकतन्त्र के लिए संघर्ष, ये दोनों एक ही समय में आरम्भ हुए। शायद इस सन्दर्भ में "एक ही समय में" कहना यहां अनुपयुक्त होगा। विज्ञान का विकास और लोकतन्त्र का विकास, ये दोनों तर्कतः परस्पर जुड़े हुए हैं। विज्ञान जिस ज्ञान का अन्वेषण करता है वह न केवल सार्वभौम ही है, बल्कि सार्वत्रिक उपयोग के लिए भी है, अतः इसके पीछे यह पूर्वमान्यता है कि विज्ञान के बिना लोकतन्त्र नहीं हो सकता, ठीक वैसे ही जैसे बिना वास्तविक लोकतन्त्र के वास्तविक विज्ञान नहीं हो सकता है। ●

'अंत के दर्शन' की कलात्मक प्रस्तुति रहस्य-रोमांच से भरपूर

अपने असमाधेय आर्थिक संकटों के दुश्चक्र से बाहर निकलने की कोशिश में, आज साम्राज्यवाद, पहले से अधिक संकटग्रस्त होता जा रहा है। यह दुश्चक्र उसके लिए अन्तकारी है। इसी से वह भयभीत भी है। अपनी आसन्न मृत्यु के खतरे से डरा-सहमा साम्राज्यवाद, मृत्यु का दर्शन दे रहा है। इतिहास, विज्ञान, कविता के अन्त की घोषणा करने के साथ ही वह मानव-जीवन के हर क्षेत्र में अंतनामा का दर्शन दे रहा है। 'अंतनामे' के इस दर्शन की कलात्मक प्रस्तुतियों की सांस्कृतिक परिदृश्य पर भरमार हो गयी है। आज पश्चिमी देशों की फिल्मों में– मानव-जीवन की त्रासदियों, समस्याओं से रहित पूंजीवादी व्यवस्था के वैभव, ऐश्वर्य के साथ रहस्य, रोमांच, चौंक-चमत्कार की विषयवस्तु को सनसनी, उत्तेजना और 'समथिंग न्यू' के मूल्यों के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

आजकल पश्चिमी देशों में बन रही अधिकांश फिल्में (जिन्हें तीसरी दुनिया के बाजार मे डब करके परोसा जा रहा है) या तो ऐक्शन फिल्में होती हैं या 'स्टारवार्स' से सम्बन्धित या विज्ञान-गल्प या सभ्यता की पुरानी चीजों की अवैज्ञानिक प्रस्तुति। इनमें कलात्मक प्रयोग व तकनीक तो अपनी ऊंचाइयों को छूते नजर आते हैं लेकिन उनके पीछे रिकार्डतोड़ बिजनेस कर ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमा लेने का ही उद्देश्य रहता है। मीडिया से प्रायोजित समीक्षाएं कराके उन्हें समाज की मुख्यधारा में लाने की कोशिश की जा रही है और आम दर्शकों का एक अच्छा-खासा हिस्सा नये-नये कलात्मक प्रयोगों से अभिभूत होकर उन फिल्मों की तारीफों के पुल बांध रहा है। जबकि इन फिल्मों में मानव-जीवन की समस्यायें और बीती शताब्दी की मानव त्रासदियां नदारद हैं। हालीवुड की पिछले वर्ष की सबसे हिट फिल्म 'फैंटम मेनस' (प्रेत की धमकी) इसका ताजातरीन उदाहरण है। जिसने हालीवुड की टिकट-खिड़की के अबतक के सारे रिकार्ड तोड़-दिये। इस फिल्म में कौतुकपूर्ण सेट के बीच अंतरिक्ष युद्ध का फिल्मांकन था। इसमें डार्थ माडल के डरावने चेहरे के साथ 'गंजन जार-जार बिंक्स' की अबूझ बोली थी। कुल मिलाकर इस फिल्म ने भय ही उत्पन्न किया। कुछ वर्षों पूर्व विज्ञान-गल्प पर निर्मित फिल्म 'ए गैलेक्सी ऑफ टेरर' ने भी कुछ, जिज्ञासा उत्पन्न करने की बजाय दर्शकों को डरा दिया था। 'इंडिपेंडेस डे', 'मिशन इम्पासिबुल', 'द मैट्रिक्स' आदि ऐक्शन फिल्मों में अमेरिकी वर्चस्व को स्थापित करने की कोशिश की गयी तथा 'द सिक्स्थ सेन्स' और 'ग्रीन माइल' जैसी फिल्में भूत-प्रेत, जादू-चमत्कार से परिपूर्ण थीं। 'जुरासिक पार्क,' 'द लॉस्ट वर्ल्ड', गॉडजिला' आदि जैसी फिल्मों में मनुष्य द्वारा विज्ञान की मदद से प्राचीन जीव-जन्तुओं का उदय होकर मानव-जाति को ही नुकसान पहुंचाते दिखाकर विज्ञान को 'वरदान' के बजाय 'अभिशाप' से विभूषित किया गया (जो पूंजीवादी सामाज में, विज्ञान के ऊपर प्रभुत्वशाली शासक वर्ग के वर्चस्व व अधिकार पर पर्दा डालता है)। इससे नियतिवाद और भाग्यवाद का प्रचार ही हुआ।

पिछली शताब्दी का अन्त होते-होते पश्चिमी देशों की फिल्मों का ट्रेंड सेट होने लगा था। रहस्य, रोमांच, चमत्कार के जन्मदाता स्टीवन स्पीलवर्ग ने डिजिटल प्रभाव के जरिये एक के बाद एक नये प्रयोग कर फिल्मों के बाजार में उछाल ला दिया। डिजिटल और 'स्पेशल इफेक्ट्स' के माध्यम से लोगों की रुचियों को बदला जाने लगा और सन् 2000 आते-आते सुख-दुख, राग-विराग, आश्चर्य, कोमलता, उत्साह आदि मानवीय गुणों से युक्त नायक को एक हद तक विस्थापित कर उसका स्थान 'स्पेशल इफेक्ट्स' ने ले लिया। इन फिल्मों में पश्चिमी दुनिया का वैभव-ऐश्वर्य तथा उसका वर्चस्व तो है, लेकिन– अमेरिका में 5 करोड़ बेरोजगारों की फौज, न्यूयार्क की सड़कों पर भीख मांगते लोग, गंदी बस्तियों में रहती एक भारी आबादी, कालों के प्रति गोरों की बर्बरता, नौजवानों में सनक और उन्माद की बढ़ती प्रवृत्ति, अमेरिकी समाज में व्याप्त अलगाव और मित्रविहीनता– यह सब कहां है ?

न सिर्फ फिल्मों में, बल्कि आजकल इंटरनेट पर भी पारलौकिक, गुप्त और रहस्यमयी चीजों के प्रसारण का विस्तार कर उसे एक बाजारू माल बनाया जा रहा है। इस अधोलोक की चीजों को माल बनाकर बेचने से ई-कॉमर्स की दुनिया में उछाल आ गया है। इंटरनेट पर 55 श्रेणियों के 1597 दृश्यों के माध्यम से मृत्यु का व्यापार एकाएक बढ़ गया है। 'डेथक्लाक' कॉम. आपके बारे में चार प्रश्नों के दृश्य की प्रस्तुति के आधार पर आपकी संभावित मृत्यु तिथि घोषित करता है। इसी तरह 'डेथ टेस्ट कॉम.' आपसे कैंसर, टी.बी. आदि बीमारियों सहित पारिवारिक इतिहास, माफिया जुड़ाव, खराब पत्रकारिता, अनिद्रारोग आदि के बारे में सवाल पूछकर अनुमानित शेष आयु बताता है। सुसी स्मिथ प्रोजेक्ट का 'आफ्टर लाइफ कोड्स कॉम.' में एक गुप्त संदेश रहेगा। उनके मरने के बाद गुप्त संदेश के कोड को सबसे पहले खोलने वाले व्यक्ति को वसीयत में 10 हजार डॉलर प्राप्त होंगे। 'फाइनल थाट्स कॉम' में आप, अपनों के लिए 'अन्तिम संदेश' छोड़ सकते हैं।

यह है साम्राज्यवाद के अंत के दर्शन की असलियत। पूंजीवाद के तमाम सकारात्मक मूल्यों के चुक जाने और मान्यताओं के घिस जाने के बाद लौकिक-अलौकिक चीजों को बेचने के साथ ही अब वह मृत्यु का व्यापार कर रहा है। वह मृत्यु की ही बातें कर सकता है भविष्य की नहीं, क्योंकि उसकी मृत्यु सन्निकट है। वह यह सब सिर्फ साजिशाना ढंग से ही नहीं कर रहा है, बल्कि बहुत कुछ उसकी इच्छा से स्वतंत्र भी है। जो उसके अंतर्य के वास्तविक रूप को प्रतिबिम्बित कर रहा है।

● दृष्टि

'अग्निदीक्षा'
एक नये मानव के जन्म की कहानी

• सत्यव्रत

निकोलाई आस्त्रोवस्की का उपन्यास **'अग्निदीक्षा'** एक नये मानव के जन्म की कहानी है जो समाजवादी युग में क्रान्ति के गर्भ से पैदा हुआ, जिसने मानवीय जीवन के उदात्त नैसर्गिक सौन्दर्य और सभी मानवीय मूल्यों की गरिमा को समाज में स्थापित कर देने के लिये अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया, जिसे स्वयं आस्त्रोवस्की ने ''हमारे युग का चरितनायक'' कहकर पुकारा और जिसके बारे में गोर्की ने यह घोषणा की कि यही सर्वहारा युगनायक आज के युग के महाकाव्य की सुरीले षट्पदी छन्दों में रचना करेगा।

इस अमर कृति ने सोवियत रूस के नौजवानों-मेहनतकशों के बीच से कम्युनिस्टों की एक कतार पैदा करने में और समाजवादी निर्माण के महान कार्य में अपनी पूरी ताकत लगा देने की चेतना पैदा करने में भारी भूमिका निभाने के साथ ही पूरी दुनिया को समाजवादी देश के एक आम नागरिक की शक्ति, उसकी वीरता और ओज, त्याग और प्यार करने की उसकी अकूत क्षमता और उसकी अदम्य जिजीविषा से—उन सारे मानवीय गुणों से जिनका निर्माण जनता के बीच होता है, जिन्हें श्रम पैदा करता है और संघर्ष निखारता है—परिचित कराया है, और दुनिया भर के मेहनतकश अवाम के लिये प्रेरणा और शक्ति के अक्षय स्रोत का काम किया है। हमारे देश में भी विगत चार-पांच दशकों से यह उपन्यास हिन्दी और अंग्रजी में भारी पैमाने पर पढ़ा जाता रहा है और 'मां' के बाद समाजवादी यथार्थवाद की कृतियों में सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त की है। हम यह जरूरी समझते हैं कि इस अमर कृति से अपने पाठकों को परिचित करायें, हालांकि बहुत सारे लोग इससे पहले से ही परिचित होंगे। **आज, जब पूरी दुनिया में सर्वहारा के नेतृत्व में जारी जनता का पूंजी-विरोधी संघर्ष रूस और चीन की ऐतिहासिक पराजयों के बाद एक अभूतपूर्व कठिनाई के दौर से गुजर रहा है और कठिन संघर्ष जारी रहने की सच्चाई के बावजूद एक आम निराशा की सी स्थिति मौजूद है, आज जब समाजवादी समाज की उपलब्धियों को विस्मृति के गर्त्त में ढकेल देने, उसकी जीवन-अग्नि पर राख की एक परत चढ़ा देने की हरचन्द साजिश सर्वहारा क्रान्ति के विश्वासघातियों द्वारा की जा रही है, ऐसे में इस उपन्यास की प्रासंगिकता और अधिक बढ़ जाती है।**

'अग्निदीक्षा' दरअसल निकोलाई आस्त्रोवस्की की अपनी जिन्दगी की काहनी है, पर वह आत्मकथा न होकर एक उपन्यास है। अपने जीवन चरित्र को उसने इसतरह नये सांचे में ढाला है कि वह उसकी समूची पीढ़ी का जीवन-चरित्र बन गया है। नायक पावेल कोर्चागिन विशिष्ट न होकर एक प्रतिनिधि चरित्र बन गया है। इस उपन्यास की रचना दुर्द्धर्ष युद्ध में लगभग पूरी तरह अपाहिज हो चुकने के बाद अनेक असाध्य रोगों की यंत्रणा से जूझते हुए जिन कठिन परिस्थितियों में हुई वह अपने आप में इस सत्य का साक्षी है कि तत्कालीन समाजवादी समाज में मानव सम्बन्धों और जीवन-मूल्यों में कितना बड़ा परिवर्तन आ चुका था और एक नये मानव का जन्म हो चुका था।

आस्त्रोवस्की को श्रद्धांजलि देते हुए फ्रांसीसी मनीषी साहित्यकार रोम्यां रोलां ने लिखा था, ''विप्लव के बीच जिन नये मनुष्यों का जन्म होता है, वे ही मनुष्य विप्लव की सबसे महान रचना होते हैं। कष्टों से पीड़ित पृथ्वी को विदीर्ण करके उसी के भीतर से एक महान, उदात्त संगीत की तरह नवजीवन का विस्फोट होता है। वह एक ऐसे अग्निमय प्राण के समान होता है जो नये विश्वास की घोषणा करके सातों आकाशों को गुंजाता दिखायी देता है। ऐसे मनुष्य जब पृथ्वी से उठ जाते हैं तो उसके बहुत दिनों बाद तक भी उनकी वाणी दसों दिशाओं में प्रतिध्वनित होती रहती है। भविष्य में ये ही व्यक्ति महाकाव्यों और वीरचरित गाथाओं के नायक और प्रेरक बनते हैं। निकोलाई आस्त्रोवस्की ऐसे ही मनुष्य थे। साहसपूर्ण और उद्दीप्त प्राण के लिये समर्पित उनकी जीवन-कहानी मानो एक उदात्तमय संगीत है।''' आस्त्रोवस्की का समग्र अस्तित्व कर्ममुख संग्राम की एक अग्निमय शिखा के समान था। मृत्यु की रात्रि उसे जितना ही चारों ओर से घेरती थी, वह शिखा उतनी ही उज्जवल ज्योति से उद्भाषित हो चमक उठती थी।

आस्त्रोवस्की अपना यह उपन्यास अपने नायक के बचपन की एक तस्वीर देकर शुरू करता है और पाठक को दिखता है कि किसतरह एक शत्रुता से भरे हुए परिवेश के विरुद्ध संघर्ष करते हुए पावेल कोर्चागिन के मन और चरित्र का निर्माण होता है, कैसे उसके विचार पकते हैं और उसकी इस आवश्यकता की जागृति होती है कि परिवेश और सम्पूर्ण समाज-व्यवस्था को नये सिरे से बनाना है, कैसे समाजवाद के लिये जनता का संघर्ष सामाजिक जीवन की आर्थिक स्थितियों को बदलकर एक नयी समाजवादी चेतना को जन्म देता है और सामाजिक और वैयक्तिक आचरण के एक नये मानदण्ड की स्थापना करता है, जो कि वास्तव में एक मानवीय आचार का आधार है।

उक्रेन के शेपेतोवका नामक छोटे से शहर की चौका-बर्तन साफ करने वाली गरीब मां का बेटा पावेल अपने 'धर्मविरोधी' प्रश्नों से चिढ़े हुए पादरी के आटे में तम्बाकू मिलाने के बाद स्कूल से निकाल दिया जाता

है और रेलवे स्टेशन के छोटे से रेस्तरां के बावर्चीखाने में काम करने लगता है जहाँ समाज के तलछट में पड़े हुए अपने जैसे अभिशप्त लोगों के जीवन में व्याप्त दुःखों, निर्मम अमानवीयता, उत्पीड़न और निराशा के विरुद्ध उसका किशोर मन सुलगने लगता है। एक बदमाश बैरा द्वारा कोर्चागिन के पीटे जाने के बाद रेलवे डिपो में काम करने वाला उसका भाई आर्त्तेम उसकी खूब कुटम्मस करता है और इस घटना के बाद पावेल बिजली घर में फायरमैन के मददगार का काम करने लगता है।

इसी बीच 1917 की फरवरी क्रान्ति होती है, आजादी-बराबरी-भाई चारे के नारे शेपेतोवका के उस छोटे से कस्बे में भी हलचल पैदा करते हैं पर जल्दी ही जीवन बदस्तूर चलने लगता है। पुनः अक्तूबर-क्रान्ति के दौरान कस्बे के लोग एक नये शब्द 'बोल्शेविक' से परिचित होते हैं जिनकी लड़ाई उनके गन्तव्यों पर जाने के दौरान कस्बे के स्टेशन पर मेन्शेविकों एवं अन्य प्रतिक्रान्तिकारियों की सरकार की फौज से होती है। 1918 के बसन्त में पहली बार लड़ते हुए बोल्शेविक उस कस्बे में प्रवेश करते हैं, पर जल्दी ही उन्हें वहां से हटना पड़ता है और जर्मनी की सेना कस्बे में प्रवेश करती है।

पावेल के भीतर उसकी नौकरी एक विद्रोही मजदूर चरित्र का निर्माण तो शुरू ही कर चुकी थी, भयानक वर्गयुद्ध की इन उथल-पुथल भरी घटनाओं के प्रति भी वह और उसके दोस्त एक किशोर सुलभ उत्सुकता के साथ सजग रहते हैं। इस दौरान बोल्शेविकों द्वारा बांटे गये राइफलों में पावेल द्वारा एक प्राप्त करने और बगल के रईस लेशचिन्स्की परिवार में अड्डा जमाये हुए जर्मन सेनापति की रिवाल्वर चुराने जैसे रोचक और साहसिक घटनायें भी घटती हैं। इसी दौरान उसकी दोस्ती तोनिया नाम की एक मध्यवर्गीय लड़की से होती है जो जल्दी ही निश्छल पवित्र प्रेम में बदल जाती है। साथ ही इसी बीच उसका परिचय जुखराई नामक मजदूर से होता है जो कम्युनिस्ट है। जब जर्मनों के खिलाफ हड़ताल के दौरान जबरन ट्रेन चलाने के लिये मजबूर किये जाने के बाद एक जर्मन की हत्या करके आर्त्तेम अपने दो साथियों सहित भाग निकलता है तो पावेल पर इस घटना का प्रभाव पड़ता है। जुखराई के क्रान्तिकारी कामों और लक्ष्य के बारे में वह कुछ-कुछ समझने लगता है।

उक्रेन इस समय निर्मम और भयानक वर्ग-संघर्ष में जकड़ा होता है। जर्मनों के हटने के बाद कस्बे में पेतल्यूरा के प्रति क्रान्तिकारी गिरोह के एक ऐटमन गोलुब का कब्जा होता है। जुखराई अचानक दुश्मनों द्वारा पकड़ लिया जाता है पर पावेल अत्यन्त बहादुरीपूर्वक रास्ते में एक पेतल्यूरा सैनिक पर हमला करके उसे छुड़ा लेता है। जुखराई बचकर पुनः भूमिगत हो जाता है और उधर पावेल खुद पकड़ लिया जाता है। इत्तफाक से वह चकमा देकर वहां से भाग निकलता है और तोनिया के घर जा छुपता है। आर्त्तेम भी तब तक वापस लौटता है और उससे तथा तोनिया से विदा लेकर पावेल कस्बा छोड़ देता है। यह छोटा सा दौर उसे जिन्दगी और जारी लड़ाई में न्याय के पक्ष के बारे में बहुत कुछ समझा देता है और उसका व्यक्तिगत विद्रोह एक सामाजिक स्वरूप लेने लगता है।

यहां से पावेल कोर्चागिन का जीवन एक नया मोड़ लेता है। वह अब युवा कम्युनिस्ट लीग का एक सदस्य और लाल सेना का एक बहादुर घुड़सवार फौजी है। अपने वर्ग की सत्ता के लिये जीवन-मरण का संघर्ष कर रहे मजदूरों की फौज के साथ वह क्रान्ति-विरोधी पोलों के साथ लड़ाई में जमकर हिस्सा लेता है। बीच में वह टाइफस बुखार से बुरी तरह ग्रस्त रहता है और एक बार घायल भी हो जाता है। पर जल्दी ही पुनः फौज की कतारों में जा शामिल होता है। इस दौरान उसकी मातृभूमि शेपेतोवका में भी घटनाओं की गति बहुत तेज रहती है। वहां बोल्शेविकों का अधिकार हो चुका है और उसके तमाम हमउम्र और दोस्त युवा कम्युनिस्ट लीग (कोमसोमोल) में सक्रिय हो चुके हैं।

लेवोव की लड़ाई में बुरी तरह घायल होने के बाद पावेल लम्बे समय तक अस्पताल में पड़ा रहा और बच तो गया पर अपनी दाहिनी आंख खो बैठा। ठीक होने के बाद जब वह अपनी प्रेमिका तोनिया से मिलता है तो यह देखकर दुःख से भर उठता है कि जीवन के बारे में तोनिया के मध्यमवर्गीय दृष्टिकोण ने उनके बीच एक न भर सकने वाली खाई पैदा कर दी है और उसका यह पहला प्यार दुःखद पर स्वाभाविक नियति के रूप में समाप्त हो जाता है।

पोलिश क्रान्ति-विरोधी युद्ध के दौरान ही जीटोमीर शहर को कब्जा करने के बाद पावेल की टुकड़ी जब कैदियों को मुक्त कर रही थी, उस समय उसकी मुलाकात शेपोतोवका, के एक प्रेस कम्पोजीटर से हुई जिससे उसे अपने कस्बे में क्रान्तिविरोधी पोलों द्वारा की गई विनाश लीला और अपने कई बहादुर दोस्त लड़के लड़कियों के बहादुराना संघर्ष और शहादत की जानकारी मिली। घायल होकर ठीक होने के बाद पावेल जब 'चेका' में काम कर रहा था, तो अचानक ही उसकी भेंट अपने प्यारे दोस्त सेर्गेई से हुई जो उसके बाद ही युद्ध में मारा गया। इन सारी घटनाओं के झटकों ने पावेल के अन्दर पैदा हुए दृढ़, शत्रुओं के लिये कठोर, लक्ष्य के प्रति समर्पित और प्यार से भरे हुए नये इन्सान को और अधिक प्रौढ़ बना दिया।

क्रान्ति-विरोधी पोलिश युद्ध की समाप्ति के बाद मानो एक तूफान को झेलकर वह शेपेतोवका में अपनी मां और भाई से मिला और कुछ दिनों वहां रहने के बाद फिर रवाना हो गया, समाजवादी समाज के निर्माण के उस काम में शामिल होने के लिये जो उसका इन्तजार कर रहा था। उपन्यास का प्रथम खण्ड यहीं समाप्त हो जाता है।

उपन्यास के दूसरे खण्ड का कथानक इतिहास के उस काल पर केन्द्रित है जब रूस में गृहयुद्ध समाप्त हो चुका है और उसे जोशो-खरोश, आत्मोत्सर्ग और

आत्मानुशासन की भावना से पावेल कोर्चागिन देश भर के बोल्शेविकों की नयी और पुरानी पीढ़ी के साथ समाजवादी निर्माण के कार्य में, आजादी, खुशहाली, बराबरी और भाईचारे की भावना से भरी नयी जिन्दगी के निर्माण कार्य में, सर्वहारा राज्य के नये आधारों के निर्माण के कार्य मे जुट जाता है।

मुनाफाखोरों-सट्टेबाजों और छिटपुट तोड़फोड़ के षड्यंत्रों के विरुद्ध पार्टी की कार्रवाइयों में लगातार हिस्सा लेता हुआ पावेल कोर्चागिन अपने जैसे तमाम बेहतरीन नौजवानों के साथ कर्मठ कोमसोमोल कार्यकर्ता बनता है और कम्युनिज्म के उसूलों का अध्ययन भी करता है। शुरू में उसने अपने कर्त्तव्य को जिस रूप में समझा था उसमें अपनी व्यक्तिगत जिन्दगी के लिये कोई स्थान नहीं था, यहां तक कि यौवन के नैसर्गिक गुण प्रेम के लिये भी उसमें कोई जगह नहीं थी। इसी कारण पावेल कोर्चागिन रिता उस्तिनोविच के प्रति अपने प्रेम का गला घोंटकर, मर्माहत रिता से अलग हो जाता है। कुछ वर्षों बाउ उसे अपनी गलती का अहसास होता है जिसकी चर्चा बाद में वह मास्को में रिता से करता है पर तबतक देर हो चुकी रहती है क्योंकि रिता उससमय तक किसी की पत्नी हो चुकी होती है। पर पावेल जीवन की इस भारी व्यक्तिगत क्षति को आन्तरिक शक्ति के बल पर झेल जाता है जो उसे जनता के साथ, समाजवादी समाज के लिये जीते-मरते हुए हासिल होती है। यही नहीं, अतिउत्साह का शिकार होकर अपनी इच्छाशक्ति का कड़ा से कड़ा इम्तहान लेने और अपने स्वास्थ्य के प्रति लापरवाही के अराजक रुमानी व्यक्तिवादी दृष्टिकोण का भी उसे अहसास होता है और वह उन्हें छोड़ देता है।

कीव में पावेल कोमसोमोल के एक स्थानीय संगठन के प्रधान के रूप में काम करता है। इन अत्यन्त कठिन अभाव के दिनों में कोमसोमोल — नौजवानों को ईंधन की असाध्य सी समस्या को हल करने के लिये जाड़ा आने के पहले तीन महीनों के भीतर दुर्गम जंगली इलाके में पांच मील लम्बी रेल-पटरी बिछाने का काम सौंपा जाता है। पावेल अपने कर्मठ नौजवान मजदूर साथियों के साथ अत्यन्त अभावग्रस्त स्थितियों में कम कपड़े और फटे जूते पहनकर बर्फ में रेल की पटरियां बिछाता है और बरसात एवं भीषण ठण्ड के साथ ही उन्हें ओर्लिक के प्रतिक्रान्तिकारी डाकू गिरोह के हमलों का भी सामना करना पड़ता है। अपनी दुर्दम आत्मिक शक्ति के दम पर जिन्दगी को बदल देने के लिये अपने को होम कर देने वाले नौजवानों को कठिन टाइफायड बुखार का भी सामना करना पड़ता है और बेहोश कोर्चागिन को वहां से शेपेतोवका रवाना कर दिया जाता है। गलतफहमी के कारण कार्चागिन की मृत्यु का समाचार हर जगह पहुंच जाता है रिता के पास भी, और इधर जीवन में चौथी बार मौत की सरहद छूकर पावेल जिन्दगी में लौट आता है और अपने साथियों को आश्चर्यचकित करता हुआ पुनः कामों में जुट जाता है।

कुछ दिन तक इलेक्ट्रिक फिटर के रूप में काम करते हुए पावेल कामेसोमोल की जिला कमेटी के मंत्री का दायित्व निभाता है। जाड़ों के शुरू होने से पहले वह बर्फ जैसे ठण्डे पानी में से बाढ़ में बहने वाले लकड़ी के कुन्दे निकालता है और फिर बीमार पड़ जाता है। गठिये का असाध्य रोग तेजी से उसे ग्रसता चला जाता है। पर थोड़ा ठीक होते ही वह फिर जीवन की तूफानी लड़ाई में वापस लौट आता है। कुछ दिनों तक उसे पोलिश सरहद पर भी काम करना पड़ता है। वहां की कोमसोमोल जिला कमेटी से जल्दी ही कोर्चागिन को सूबा कमेटी में बुला लिया जाता है और उसे पार्टी-सदस्य बनाने की सिफारिश की जाती है। इसबीच लेनिन की मृत्यु होती है, पूरे सोवियत रूस में शोक की लहर दौड़ जाती है, पर साथ ही पूरे देश में लेनिन के नेतृत्व में जारी कार्यों को पूरा करने के संकल्प के साथ लाखों मजदूर बोल्शेविक पार्टी में शामिल होते हैं जिनमें पावेल के दोस्त शहीद वालिया और सेर्गेई का बूढ़ा बाप जखार और पावेल के भाई आर्त्योम जैसे लोग भी हैं।

एक ओर पावेल आकण्ठ कामों में डूबा हुआ होता है, दूसरी ओर छोटी सी उम्र में ही उसका शरीर तेजी से साथ छोड़ना शुरू करता है। जिसकी चरम परिणति यह होती है कि उसके लाख विरोधों के बावजूद उसे छुट्टी देकर उक्रेन पार्टी केन्द्रीय समिति के सेनेटोरियम में भेज दिया जाता है। 24 वर्ष की छोटी उम्र में उसके जीवन के उदास त्रासद नाटक के अन्तिम अंक का पर्दा अब उठ चुका है। कई आपरेशनों और इलाज के बाद यह तय सा हो जाता है कि पावेल का शरीर अब अधिक दिन उसका साथ नहीं दे सकता। इस बीच वह समुद्रतट के किनारे के एक छोटे से कस्बे में अपनी मां की दोस्त अलबिना क्युत्सम से मिलने गया जहां एक पिछड़े हुए बाप की तानाशाही में जी रही उसकी लड़कियों लोला और ताया से उसका परिचय होता है। एक बार फिर वह वापस लौटकर काम करने का प्रयास करता है पर शरीर एकदम साथ नहीं देता। काम से छुट्टी और पेन्शन लेकर पावेल पुनः क्युत्सम परिवार से मिलने जाता है। वहां ताया, जो अपने मां-बाप और आवारा भाई से अलग हो चुकी है, धीरे-धीरे उसके निकट आती है और दोनों शादी करते हैं। इन अन्तिम क्षणों में पावेल जिन्दगी को बेइन्तहां प्यार के साथ पकड़े हुए है। ताया को एक कम्युनिस्ट बनाने के साथ ही वह नौजवानों की स्टडी सर्किल भी लेने लगता है। इससमय तक उसका शरीर लकवा से अपंग हो चुका होता है, दूसरी आंख भी अन्धी हो चुकी होती है। पर जीवन की लड़ाई से अवकाश न लेने के लिये संकल्पबद्ध पावेल पुनः एक रास्ता निकाल ही लेता है। वह अपने जीवन के गृहयुद्ध के दिनों के अनुभव को लेकर पटरी रखकर स्वयं एक उपन्यास लिखना शुरू करता है। बाद में साथियों से लिखवाने लगता है और इसतरह 'तूफान के बेटे' नामाक उपन्यास की अत्यन्त कठिन परिस्थितियों में वह रचना करता है। प्रादेशिक कमेटी से उपन्यास के प्रकाशन की स्वीकृति का तार मिलने के साथ

ही उसे लगता है कि वह एक बार फिर जिन्दगी के मैदान में लड़ने वालों की कतार में वापस लौट आया है और उपन्यास यहीं समाप्त हो जाता है।

घटनाओं के अत्यन्त रोचक और गतिमान प्रवाह के दौरान नायक पावेल कोर्चागिन के जीवन की केन्द्रीय कहानी से गुंथे हुए उसके कई बहादुर साथी और पुराने बोल्शेविक क्रान्तिकारी पात्र भी आते हैं और साथ चल रही अन्य घटनाओं-प्रसंगों के माध्यम से उदात्त भावों से ओत-प्रोत उनका सच्चा मेहनतकश जीवन भी झांकता रहता है।

जैसा कि हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, पावेल कोर्चागिन का जीवन आस्त्रोवस्की का अपना जीवन है पर उसने उसे अपनी पीढ़ी और अपने समाज के एक प्रतिनिधि चरित्र के रूप में ढाला है और यह दिखाया है कि उसकी वीरता रूस के मजदूर वर्ग के अन्दर निहित वीरता है जिसकी प्रकृति उसकी जिन्दगी के हर नये दौर के साथ बदलती जाती है। कोर्चागिन अपनी जीवन-स्थिति के विरुध जो सहज प्रतिवाद करता है वह उसको वर्ग-संघर्ष के भीतर खींच लाता है और उसी रास्ते पर बढ़ते हुए उसके भीतर एक समाजवादी चेतना का उदय होता है, गृहयुद्ध और समाज के निर्माण के दौर से गुजरते हुए उसमें आत्मोत्सर्ग की भावना और फिर सजग कम्युनिस्ट आत्म अनुशासन जन्म लेता है और अशक्तता और बीमारी के बावजूद नवजीवन-सृजन के संघर्ष में लगे रहने की उसकी जद्दोजहद उसे जनता के लिये एक मिसाल बना देती है।

पावेल कोर्चागिन के ये सबसे अच्छे गुण हवा में नहीं पैदा होते बल्कि समाजवाद के लिए जनता के संघर्ष कें योगदान देने की प्रक्रिया में पैदा होते हैं, मँजते और निखरते हैं। समाजवादी प्रणाली में श्रम की प्रकृति, उसका रूप और प्राण दोनों बदल जाते हैं और करोड़ों आदमी निर्माण में लगी हुई एक ही समष्टि के अंग बन जाते हैं। ये परिवर्तन आस्त्रोवस्की के पात्रों के विचारों, भावनाओं और उनके आपसी सम्बन्धों को बदल डालते हैं। लड़ाई के मोर्चे से लौटने के बाद ही पावेल के भीतर श्रम और समाजवादी सम्पत्ति के प्रति नया दृष्टिकोण दिखाई देने लगता है और उत्पादन के नये सम्बन्धों से पैदा होने वाली नई सामूहिक स्वामित्व की भावना से अनुप्राणित होकर वह क्रान्तिविरोधियों, तोड़-फोड़ करने और मुनाफा कमाने वालों के अतिरिक्त स्वार्थी और आलसी लोगों तथा पार्टी के भीतर घुसे विजातीय तत्वों से भी निर्मम संघर्ष करता है। समष्टि से हटकर हम पावेल की कल्पना नहीं कर सकते। उसे उसके अपने ऐसे साथियों से अलग कर के नहीं देख सकते—जैसे सर्योजा ब्रुजाक जो युद्ध में इसलिये जाता है कि फिर युद्ध न हो, जैसे सर्योजा की बहन वालिया, वह महान देशभक्त युवती जिसे क्रान्ति विरोधी पोल मार डालते हैं, या लाल सेना की एक कम्पनी द्वारा गोद लिया गया अनाथ लड़का ईवान जार्की, या जैसे जिला कोमसोमोल का मन्त्री ओकुनेव या युवा जहाजी मजदूर पांक्रातोव। पावेल और उसके साथी उस पुरानी बोल्शेविक पीढ़ी से ही अपने सबसे अच्छे गुणों की विरासत प्राप्त करते हैं जिनके प्रतिनिधि इस उपन्यास में बोलोस्त की गुप्त क्रान्तिकारी कमेटी के प्रधान दोलिनिक, भूतपूर्व मल्लाह और बहादुर एवं पुराने बोल्शेविक जुखराई और 1903 से ही पार्टी सदस्य तोकारेव जैसे लोग करते हैं।

पूरे उपन्यास में लड़ाई, रेल की पटरी बिछाने, पार्टी और कोमसोमोल की मीटिंगों जिनमें त्रात्स्कीपंथियों को पीछे ढकेला जाता है तथा सोवियत-पोलिश सीमा पर उत्सव जैसे जनता के सामूहिक कार्यों के तमाम जीवन्त चित्रों में उदात्त भावनाओं और विचारों का जो रूप दिखाई पड़ता है, वह पात्रों के वैयक्तिक गुण के बजाय एक समूचे राष्ट्र का गुण बन जाता है। साथ ही, पावेल और उसके मित्रों के आन्तरिक भावनाओं-गुणों में प्रेम और मैत्री का एक बहुत ही ऊंचा और पवित्र नैतिक मानदण्ड दिखाई देता है और इसकी अजस्र धारा पावेल और तोनिया, सर्योजा और रिता या पावेल और रिता के कोमल सम्बन्धों के सूत्र में या पावेल और उसकी पत्नी ताया के परस्पर सम्बन्धों में, बहती हुई दिखाई देती है।

इस तरह से सभी व्यक्ति-पात्र मिलकर जनता की एक विशाल मूर्ति बन जाते हैं और कहा जा सकता है कि जनता ही इस उपन्यास की नायक है।

इस उपन्यास का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि यह क्रान्ति को राज्यसत्ता हाथ में आने के बाद और सत्ता के सुदृढ़ीकरण के बाद भी जारी रहने वाली वर्ग-संघर्ष की सतत् प्रक्रिया के रूप में दर्शाता है और तीक्ष्ण अन्तर्विरोधों से कन्नी काटने के बजाय नये समाज के निर्माण के दौरान की कुरूप सच्चाइयों को भी सामने लाता है। यह दिखलाता है कि वर्ग-समाज का अभिशाप अतीत किस तरह क्रान्ति के बाद भी मजदूर वर्ग और जनता की छाती पर दुःस्वप्न की तरह सवार रहता है और व्यक्तियों की चेतना में पूंजीवाद के अवशेष किस तरह पिछड़े विचारों के रूप में मौजूद रहते हैं और कठिन संघर्ष में ही दूर होते हैं। साथ ही चूंकि समाजवादी संक्रमण के प्रारंभिक दौर में वर्ग अभी मौजूद रहते हैं पूंजीवादी उत्पादन-सम्बन्ध अभी मौजूद रहते हैं इसलिए वर्गसंघर्ष खुले रूप में जारी रहने के अतिरिक्त विचारधारात्मक तथा अन्य परोक्ष रूपों में भी चलता रहता है और पार्टी के भीतर पतित त्रात्स्कीपंथी दबाव, दुश्चरित्र फाइलो, राजवालिखिन, शुम्स्की, स्तारोवेरोव जैसे विजातीय तत्व उन्हीं का प्रतिनिधित्व करते होते हैं। यदि लगातार संघर्ष करके इन तत्वों की छंटनी न की जाय, पार्टी-कार्यकर्ताओं के विचारधारात्मक स्तर को उन्नत न किया जाय और मजबूत कम्युनिस्ट चरित्रों का निर्माण न किया जाय—तात्पर्य यह कि क्रान्ति के सतत् जारी रखने के रूप न निकाले जांय तो समाजवाद की जीत हार में भी बदल सकती है, यह रूस और चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के बाद स्पष्ट है। हालांकि आस्त्रोवस्की के काल में यह समस्या अभी स्पष्ट नहीं हो सकी थी पर उन्होंने अपने अनुभव से उस समय पार्टी के भीतर के

विजातीय तत्वों के साथ संघर्ष का जो चित्र प्रस्तुत किया है, उसे आज अच्छी तरह से समझा जा सकता है और यह बात इस उपन्यास की प्रासंगिकता को और अधिक बढ़ा देती है।

रूसी उपन्यासों में भावों की गहराई और सामाजिक अन्तर्विरोधों और सामाजिक संघर्षों के भीतर झांकती गहरी अन्तर्दृष्टि की परम्परा को आस्त्रोवस्की इस उपन्यास में आगे ले जाते हैं। समाजवादी यथार्थवाद के प्रणेता गोर्की ने क्रान्ति पूर्व की अपनी रचनाओं में पावेल ब्लासोव एवं अन्य मजदूरों के रूप में जिस सर्वहारा नायक की रचना की थी, इसमें आस्त्रोवस्की ने नये गुणों का समावेश किया जिनका जन्म समाजवादी निर्माण के काल में, एक नये समाज में हुआ था। दिलचस्प बात यह है कि आस्त्रोवस्की साहित्यकार नहीं था, एक कम पढ़ा-लिखा आदमी था। पर जीवन और उसके सौन्दर्य से उसका इतने निकट का परिचय था कि पहली बार ही उसकी कलम से जीवन की पुनर्रचना समाजवादी यथार्थवाद की एक अनूठी कृति और विश्वसाहित्य की एक धरोहर बन गयी। जीवन के संघर्ष से किनारे रहकर जनता के लिये साहित्य-सृजन करने का मुगालता पालने वालों के लिये आस्त्रोवस्की का जीवन कृतित्व एक शिक्षा है।

अन्त में हम अपने पाठकों से जोर देकर कहना चाहेंगे कि वे इस उपन्यास को एक बार नहीं, कई बार पढ़ें जो उन्हें जीवन के आन्तरिक सौन्दर्य से क्रान्ति के संघर्ष में निहित अदम्य प्राणशक्ति से, समष्टि की अपार क्षमता और सृजनशीलता से, और आने वाले उस नये समाज से परिचित करायेगा जिसके लिये हमें अभी एक लम्बी लड़ाई लड़नी है। निश्चित तौर पर यह उपन्यास आपको संघर्ष करने की प्रेरणा और शक्ति देगा और यथास्थिति से विद्रोह करके जीने का सलीका सिखायेगा।

रपट : विचार गोष्ठी

नई सदी में नये वेग से परिवर्तन का ज्वार उठेगा

गोरखपुर। "नई सदी साम्राज्यवाद के विध्वंस और बिस्मिल एवं उनके साथियों के सपनों को हक़ीक़त में तब्दील करने की सदी होगी। अभूतपूर्व ऐतिहासिक परिवर्तनों की इस सदी में मध्यवर्ग के युवा क्रान्तिकारी बुद्धिजीवी मेहनतकश अवाम के साथ खुद को जोड़ते हुए इतिहास द्वारा सौंपे गये कार्यभारों को पूरा करेंगे। ये विचार दिशा छात्र समुदाय द्वारा राम प्रसाद बिस्मिल के शहादत दिवस (19 दिसम्बर) पर आयोजित विचार-गोष्ठी में प्रमुखता से उभरकर सामने आये। इस विचार गोष्ठी का विषय था — "नई सदी में साम्राज्यवाद, बिस्मिल का अधूरा सपना और हम।"

विचार गोष्ठी के अध्यक्षीय वक्तव्य में **जनवादी लेखक संघ** के स्थानीय सचिव **प्रमोद कुमार** ने कहा कि साम्राज्यवादी प्रचार-तंत्र और साम्राज्यवाद प्रायोजित चिन्तकों द्वारा फैलायी जा रही वैचारिक धुंध और झूठे प्रचारों के बावजूद एक बेहतर इन्सानी दुनिया बनाने के सपने कभी मरेंगे नहीं।

अध्यक्षमंडल के दूसरे सदस्य **बिगुल मजदूर दस्ता** के साथी **आदेश सिंह** ने कहा कि साम्राज्यवादी भूमण्डलीकरण के मौजूदा नये दौर में दिखायी पड़ने वाली साम्राज्यवादी आक्रामकता सतह की सच्चाई है। सच्चाई यह है कि साम्राज्यवाद अपने आन्तरिक संकटों से दिन-ब-दिन खोखला होता जा रहा है और पतन की ओर अग्रसर है।

आदेश सिंह ने कहा कि भूमण्डलीकरण की आक्रामक नीतियों द्वारा साम्राज्यवादी ताकतें तीसरी दुनिया के शासक वर्गों के साथ सांठ-गांठ करके जो सामाजिक तबाही पैदा कर रही हैं उससे आने वाले दिनों में भीषण सामाजिक उथल-पुथल की भूमिका तैयार हो रही है। नई सदी में नये वेग से परिवर्तन का ज्वार उठेगा और इसके परिणामस्वरूप शोषण उत्पीड़न से मुक्त एक बिल्कुल भिन्न नयी दुनिया अस्तित्व में आयेगी। इतिहास के ज्ञान व आज के समय की सही पहचान से नई सदी की यही तस्वीर उभरती है।

नारी सभा की संयोजिका **मीनाक्षी** ने गोष्ठी में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि नई सदी में साम्राज्यवाद के ताबूत में आखिरी कील ठोंकने और बिस्मिल के अधूरे सपनों को पूरा करने का काम इस बात पर निर्भर करेगा कि हिन्दुस्तान का छात्र-नौजवान और मध्यवर्ग अपनी ऐतिहासिक जिम्मेदारी को निभाने के लिए कितनी जल्दी संकल्पबद्ध होता है।

फिल्म निर्देशक और मीडिया कर्मी **प्रदीप सुविज्ञ** ने आज के दौर में आम मध्यवर्गीय जीवन पर साम्राज्यवाद के सांस्कृतिक वर्चस्व के पड़ रहे गहरे प्रभावों का जीवन्त चित्र उपस्थित करते हुए कहा कि इसके खिलाफ सांस्कृतिक मुहिम तेज करनी होगी और लोगों को यह बताना होगा कि बिस्मिल एक ऐसा समाज बनाना चाहते थे "जिसमें प्रकृति की देन पर सबका एक समान अधिकार हो और कोई किसी पर शासन न करे।" सामाजिक कार्यकर्ता **स्वदेश कुमार** ने साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष में नये उपकरणों को गढ़ने की आवश्यकता रेखांकित की।

विचार गोष्ठी में हसन रज़ा रिजवी, एडवोकेट, ए० के० पाण्डेय, शरद चन्द्र मल्ल, सुनील चौधरी, माधवी मिश्र, मंजू तिवारी एवं अनिल कुमार ने भी अपने विचार व्यक्त किये।

विचार गोष्ठी का विषय प्रवर्तन **दिशा छात्र समुदाय** की संयोजन समिति के सदस्य **राकेश कुमार** और संचालन **अरविन्द सिंह** ने किया।

● शालिनी

अन्याय के विरुद्ध विद्रोह न्यायसंगत है ! विद्रोह करना सीखो !! विद्रोह से क्रान्ति की ओर आगे बढ़ो !!!

प्रकृति और जीवन

चिड़ियों का गाना
नदियों का संगीत
और पेड़ों का झूमना
सब गड्डमड्ड हो गये हैं।
दिशाएं गुम हो गयी हैं
जिन्दगी के नाटक में।
नहीं सुहाता
चिड़ियों का चहचहाना
नदियों का पानी बेस्वाद लगता है
और पेड़ों की छांह
अटपट !
क्यों लगता है ऐसा ?
दिलों के तनाव हमारे-
ये दूरियां-
शायद यही उलझन है
सुलझाना है जिसे !
लेकिन नहीं जानता
कैसे ?

अनन्त यात्रा

आगे बढ़ो !
बढ़ते रहो, आगे, और आगे !
जब तक साथ दें पांव
लेकिन क्षितिज
मंजिल नहीं है।
कोई एक मंजिल तो बस शुरुआत है
एक नये सफ़र की।

जियो,
एक भरी-पूरी ज़िन्दगी
और चुनो एक मकसद
जो दे सच्ची खुशियां
क्योंकि मरना
किसी मक़सद के लिए
बेहतर है
मरते हुए जीने से।

• **जयपुष्प**, गोरखपुर,(अंग्रेजी से अनूदित)

(1)

अभी हर तरफ धुआं-धुआं है
कभी-कहीं कोई लौ जलती है
कभी-कहीं कोई लौ बुझती है।
इस घड़ी में भी
दहकते शोलों का कारवां बढ़ रहा है
क्रान्ति-लौ को अपने में समेटे हुए
एक साथ जलने के लिए
एक साथ जलाने के लिए।

(2)

सागर चुप है
संगम पर नदियां उकसाती हैं
उसकी चुप्पी तोड़ने को।
आततायी सोचते हैं,
वे कुछ उथली बातें करती हैं
वे बातें हैं
सागर के विस्तृत अन्ततल
को छू देने वाली
उसमें क्रान्ति लाने वाली।
तमाम विरोधी शक्तियां
साजिशें रचती हैं
उसे चुप रखने की।
और नदियां, संयुक्त श्रम से
विरोध करती हैं !
सागर सब देखता है
धीरे-धीरे सब समझता है
और जब,
आततायी करते हैं इस्तेमाल
अमावस की काली रात का —
अपने आखिरी अस्त्र का
वे सोचते हैं,
उनकी विजय हो गयी।
किन्तु ;
ऐसे में ही
सागर की चुप्पी टूटती है
उसकी लहरें ऊंची उठती हैं
जो, बहुत भयंकर
ज्वार आने का संकेत देती हैं।

• **देवेन्द्र प्रताप**, नैनीताल

घटिया साहित्य के घटाटोप
और अपसंस्कृति के अन्धेरे में
उत्कृष्ट, स्तरीय, जनपक्षधर, क्रान्तिकारी
क्लासिकीय साहित्य को
जन-जन तक पहुंचाने हमारे मिशनके
हमसफ़र बनें !

जनचेतना

प्रगतिशील साहित्य का उत्कृष्ट प्रतिष्ठान

अच्छे साहित्य की
खरीद को अपने बजट का
जरूरी मद बनाएं।

आज ही हमसे मिलें या डाक से मंगाने के लिए लिखें !

- जाफरा बाजार, गोरखपुर - 273 001
  (सायं 4 बजे से 8 बजे तक, मंगलवार अवकाश)
- हजरतगंज, निकट कॉफी हाउस, लखनऊ
  (सायं 5 बजे से 8 बजे तक, रविवार अवकाश)

जीवन और समाज के सभी पहलुओं को छूती
हिन्दी की अनन्य गम्भीर वैचारिकी

दायित्वबोध

सम्पादक : विश्वनाथ मिश्र

सम्पादकीय कार्यालय :
3/274, विश्वास खण्ड
गोमती नगर, लखनऊ
पिन - 226010

एक प्रति : पन्द्रह रुपये
वार्षिक : साठ रुपये

पढ़िए !

मेहनतकशों का इंकलाबी मासिक अखबार

बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय :
द्वारा ओ०पी० सिन्हा
६६, बाबा का पुरवा (पुराना)
पेपर मिल रोड
निशातगंज, लखनऊ

सहयोग राशि :
एक प्रति : तीन रुपये
वार्षिक : छत्तीस रुपये
(डाक व्यय सहित)

'आह्वान' यहां से प्राप्त करें

उत्तर प्रदेश
जनचेतना, जाफरा बाजार, गोरखपुर विजय इन्फार्मेशन सेन्टर, कचहरी बस स्टेशन, गोरखपुर विश्वनाथ मिश्र, नेशनल पी० जी० कालेज, बड़हलगंज, गोरखपुर डा० दूधनाथ, शहीद पुस्तकालय, मर्यादपुर, मऊ कृष्ण गोविन्द सिंह, बी०-37, बिड़ला छात्रावास, बी०एच०यू०, वाराणसी प्रोग्रेसिव बुक सेण्टर, विश्वनाथ मन्दिर गेट, बी०एच०यू० परिसर, वाराणसी-221005 राजेन्द्र प्रसाद, रेणु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, रेणुकूट, सोनभद्र प्रो० प्यारे लाल, 139 फूल बाग कालोनी, पन्तनगर कृषि विश्वविद्यालय, पन्तनगर - 263145 रविन्द्र कुमार, भारतीय जीवन बीमा निगम, पन्तनगर, ऊधमसिंहनगर रामपाल सिंह, भारतीय जीवन बीमा निगम, रूद्रपुर, ऊधमसिंह नगर चारुचन्द्र, ए-26 वेन्सफील्ड छात्रावास, कुमायूं विश्वविद्यालय, नैनीताल-263001 देवेन्द्र प्रताप, कमरा नं० - 14, बैरक 1-ए, बुकहिल छात्रावास, मल्लीताल, नैनीताल-263001 डी० के० सचान, कृषि विज्ञान केन्द्र, विकास भवन, न्यू कलेक्ट्रट, गाजियाबाद

दिल्ली
सत्यम वर्मा, 81 समाचार अपार्टमेण्ट, मयूर विहार, फेज-1, नयी दिल्ली-110091 ललित सती, भारतीय जीवन बीमा निगम, 11 के, 16/67-68, फैज रोड, करोल बाग, नई दिल्ली

बिहार
एस० के० शर्मा 282-बी, रेलवे कालोनी गढ़हरा, बेगूसराय पीपुल्स बुक हाउस, पटना कालेज के सामने, पटना समकालीन प्रकाशन (प्रा. लि.) पुस्तक बिक्री केन्द्र, आजाद मार्केट, पीरमुहानी, पटना

पं० बंगाल
बुक मार्क, 6 बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-700071 जनार्दन थापा, लुकसान बाजार, पो.-करेन, जि.-जलपाईगुड़ी-735205 सी. पी. सरोज, सनराइज स्कूल, छोटा अदलपुर, सेमलबाडी, दार्जिलिंग, राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मन्दिर, प्रधाननगर, सिलीगुड़ी, दार्जिलिंग

मध्य प्रदेश
चिंचोलकर बुक हाउस, बस स्टैण्ड, जगदलपुर, बस्तर विकल्प सांस्कृतिक मोर्चा, 1835, सिल्वर ओक कम्पाउण्ड, नेपियर टाउन, जबलपुर-1

राजस्थान
सुभाष चन्द्र, 221, उत्तरी सुन्दर वास, गंगा फ्लोर मिल, उदयपुर

हरियाणा
नरभिण्डर सिंह, शहीद भगतसिंह विचार मंच, हरियाणा, ग्राम/पो. - सन्तनगर, जिला - सिरसा

महाराष्ट्र
पीपुल्स बुक स्टाल, 15 कावसजी पटेल स्ट्रीट, फोर्ट, मुम्बई - 400001

असम
शर्मा बुक स्टाल, थाना रोड, चराली, तिनसुकिया

नेपाल
पुस्तक पत्र-पत्रिका बिक्री केन्द्र, डिल्ली बाजार, उकालो, काठमांडू
विश्व नेपाली पुस्तक सदन, श्रवण पथ, बुटवल, रूपनदेई

दुर्गा भाभी को आखिरी सलाम

अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ चले क्रान्तिकारी आन्दोलन की सक्रिय कार्यकर्त्ता दुर्गा देवी वोहरा का विगत ४ अक्टूबर 1999 को 92 वर्ष की आयु में निधन हो गया। शहीद भगवती चरण वोहरा की सहधर्मिणी होने के नाते साथी क्रान्तिकारियों के बीच वे दुर्गा भाभी नाम से जानी जाती थीं। क्रान्तिकारी आन्दोलन के लक्ष्यों के प्रति अटूट निष्ठा व संगठन के साथियों के प्रति गहरे आत्मिक लगाव के कारण बेहद मुश्किल एवं जोखिम भरे कार्यों को पूरा करने के लिए वे सदैव ही तत्पर रहती थीं। एक साझे लक्ष्य के लिए, एक बेहतर मानवीय दुनिया के लिए संघर्षरत सहयोद्धाओं के बीच यदि सच्चा भावनात्मक जुड़ाव हो तो लम्बे सफर की कठिनाइयों को और अग्निपरीक्षा की हरेक घड़ियों को कितनी आसानी एवं सहजता से पार किया जा सकता है, दुर्गा भाभी का जीवन एवं कर्म इसका एक ज्वलन्त उदाहरण है। 'आह्वान' की पूरी टीम की ओर से दुर्गा भाभी को आखिरी सलाम एवं क्रान्तिकारी श्रद्धांजलि !

शहीदों के जो ख्वाब अधूरे
नयी सदी में होंगे पूरे ।
नई सदी में नये वेग से
परिवर्तन का ज्वार उठेगा ।
आए ज्वार प्रचंड वेग से आए ।

युवा शौर्य - पराक्रम
भारतीय जन के सपनों - संघर्षों
और साम्राज्यवाद-पूंजीवाद विरोधी भारतीय क्रान्ति
के प्रतीक पुरुष

शहीदे आज़म भगत सिंह
एवं उनके सहयोद्धाओं राजगुरु, सुखदेव के
शहादत दिवस (23 मार्च)
के अवसर पर

शतशः क्रान्तिकारी प्रणाम !

दिशा छात्र समुदाय • नारी सभा • नौजवान भारत सभा

राजबन्दी का बयान

मेरे ऊपर अभियोग है कि मैं राजद्रोही हूं। इसीलिये आज मैं राजकारागार में बन्दी और राजद्वार पर अभियुक्त हूं।

एक ओर राजा का मुकुट है, दूसरी ओर धूमकेतु शिखा है। एक राजा है, हाथ में राजदण्ड है, दूसरा सत्य है, हाथ में न्यायदण्ड है। राजा की तरफ राजा के नियुक्त राज वेतन राजभोगी कर्मचारी हैं.....

मैंने कहा कि मैं सत्य को प्रकाशित करने का यंत्र हूं। उस यंत्र को कोई क्रूर शक्ति अवरुद्ध करना चाहे तो कर सकती है, मिटाना चाहे तो मिटा सकती हैं, लेकिन वह मंत्र जो फूकते हैं, उस वीणा पर जो रुद्रवाणी उठाते हैं, उन्हें कौन रोकेगा? उस विधाता का विनाश कौन करेगा ? मैं अमर नहीं हूं, किन्तु मेरा विधाता अमर है। मैं मर जाऊंगा, राजा भी मरेगा क्योंकि मेरी तरह बहुतेरे राज्द्रोही मर गये हैं, और इस तरह का अभियोग करने वाले बहुतेरे राजा भी मर गये हैं—किन्तु किसी समय किसी कारण से भी सत्य का प्रकाश निरुद्ध नहीं हुआ - उसकी वाणी नहीं मरी। वह आज उसीतरह अपने को प्रदर्शित करती है और चिरकाल तक करती रहेगी। मेरी यह शासन निरुद्ध वाणी फिर दूसरे के गले से निकल पड़ेगी। मेरे हाथ की वंशी छीन लेने पर ही वंशी के स्वर की मृत्यु नहीं हो जायेगी, क्योंकि मैं फिर दूसरा वंशी लेकर या बनाकर उससे वही सुर निकाल सकता हूं।सुर मेरी वंशी में नहीं है, सुर मेरे मन में और अपनी वंशी से पैदा करने के कौशल में है। इसलिए दोष वंशी का नहीं, सुर का भी नहीं, दोष मेरा है जो उसे बजाता है, उसी तरह जो वाणी मेरे कण्ठ से निकली है उसके लिये जिम्मेदार मैं नहीं हूं। दोष न तो मेरा है और न मेरी वीणा का, दोष उनका है—जो मरे गले में अपनी वीणा बजाते हैं—इसलिये राज विद्रोही मैं नहीं हूं···

(प्रेसीडेन्सी जेल, कलकत्ता में 7 जनवरी, 1923 को महाकवि नजरुल इस्लाम के ब्रिटिश सरकार के अभियोगों के विरुद्ध दिये गये वक्तव्य के उद्धरणांश)

अवतार सिंह पाश के शहादत दिवस (23 मार्च) के अवसर पर

पाश

तुम्हारे जिस्म को
छलनी कर
उन्हें भ्रम था
कि तुम्हारे शब्द भी
हो जायेंगे खामोश
लेकिन वे नहीं जानते थे
कि कवि के मरने से
कभी कविता नहीं मरती
कविता तो जीवित रहती है
सांसों से सांसों तक
आदमी से आदमी तक
पीढ़ियों से पीढ़ियों तक
पवन के रथ पर
होकर सवार

तुम्हारे जिस्म को छलनी कर
उन्हें भ्रम था
कि पाश मर गया है

लेकिन पाश तो ज़िन्दा है
हल चलाते किसानों के गीतों में
उगी कपास के फूलों में
गांवों की चौपालों में
अपने शब्दों में
पाश अभी जिन्दा है
अपनी कविताओं में
खेत
अपने बेटों को
कभी मरने नहीं देते

-अमरजीत कौंके

नवारुण भट्टाचार्य की दो कविताएं

बुरा वक्त

बुरा वक्त कभी अकेले नहीं आता
उसके संग-संग आती है पुलिस
उसके बूटों का रंग काला है
बुरा वक्त आने पर
हंसी पोंछ देनी पड़ती है रूमाल से
पंखुड़ियां धूल हो जाती हैं
जुए का बाजार फूलता जाता है मरे हुए जानवर की तरह
प्रेम की गर्दन जकड़ कर
डर झूलता रहता है
अभागे लोग लटकते हैं लैंपपोस्ट से
गले में रस्सी डालकर
उनके साथ में लुकाछिपी खेलते हैं कालाबाजारिये
सड़कों पर किलबिलाते हैं
वी डी, वेश्याओं के दलाल और जेम्स बांड
भीड़ को ढकेल कर सायरन बजाती हुई
पुलिस गाड़ी चली जाती है
उसमें बैठी होती है पुलिस
उनके बूटों का रंग उनके होठों की तरह काला है
उनकी घड़ी में बजता है
बुरा वक्त ।

हे लेखक

कलम को कागज पर फेरते हुए
आप दृष्टि को
बड़ा नहीं कर सकते
क्योंकि कोई नहीं कर सकता।

दृश्य के नीचे जो बारूद और कोयला है
वहां एक चिनगारी
ज़ला सकेंगे आप ?

दृष्टि तभी बड़ी होगी
लहलहाते
फूल फूलेंगे धधकती मिट्टी पर
फटी-जली चीथड़े-चीथड़े जमीन पर
फूल फूलेंगे।

ज्वालामुखी के मुहाने पर
रखी हुई है एक केतली
वहीं निमंत्रण है आज मेरा
चाय के लिए।
हे लेखक, प्रबल पराक्रमी कलमची
आप वहां जायेंगे ?